“गायब होता देश’ और ‘आकुपच्चनि देशम्’ आदिवासी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन”

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की एम.फिल.(हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध)

2016

शोधार्थी

ज्योति बाई .वी

हिन्दी विभाग

मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद - 500 046

“GAYAB HOTA DESH’ AUR ‘AAKUPATCHANI DESHAM’ ADIVASI UPANYASON KA TULNATMAK ADHYAYAN”

A dissertation submitted during Year 2016 to the University of Hyderabad in partial fulfillment of the award of a **M.Phil. Degree** in Department of Hindi, School of Humanities.

By

JYOTHI BAI .V

2016

DEPARTMENT OF HINDI, SCHOOL OF HUMANITIES

UNIVERSITY OF HYDERABAD

(P.O.) CENTRAL UNIVERSITY, GACHIBOWLI

HYDERABAD – 500 046

TELANGANA STATE

INDIA

CERTIFICATE

This is to certify that the dissertation entitled **"GAYAB HOTA DESH' AUR 'AAKUPATCHANI DESHAM' ADIVASI UPANYASON KA TULNATMAK ADHYAYAN" ("गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' आदिवासी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन")** submitted by JYOTHI BAI .V bearing Regd. No. **15HHHL19** in partial fulfillment of the requirements for the award of Master of Philosophy in **HINDI** is a bonafide work carried out by her under our supervision and guidance which is a plagiarism free dissertation.

The dissertation has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of the supervisor

PROF. R.S.SARRAJU

Head, Department of Hindi
University of Hyderabad

Dean, School of Humanities
University of Hyderabad

DECLARATION

I, JYOTHI BAI .V hereby declare that this Dissertation entitled **"GAYAB HOTA DESH' AUR 'AAKUPATCHANI DESHAM' ADIVASI UPANYANSON KA TULNATMAK ADHYAYAN" ("गायब होता देश' और आकुपच्चनि देशम्' आदिवासी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन")** submitted by me under the guidance and supervision of **PROF.R.S.SARRAJU** is a bonafide research work which is also free from plagiarism. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my dissertation can be deposited in Shodganga/INFLIBNET.

Date : 30 /06/2016

Name : JYOTHI BAI .V

Signature of the Student :

Regd. No. 15HHHL19

“गायब होता देश’ और ‘आकुपच्चनि देशम्’ आदिवासी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन”

-अनुक्रमणिका-

भूमिका

प्रथम अध्याय

‘आदिवासी साहित्य’ :अवधारणा, स्वरूप एवं विस्तार

1.**आदिवासी शब्द की अवधारणा**

1.1 परिभाषाएँ

1.2 आदिवासी साहित्य का स्वरूप

1.3 आदिवासी साहित्य में उभरती आंतरिक चेतना

1.4 आदिवासी साहित्य का विस्तार

1.4.1.संथाली साहित्य

1.4.2 कुडुख (उराँव) साहित्य

1.4.3 मुंडा साहित्य

1.4.4 बंजारा (लंबाडा) साहित्य

1.4.5 तेलुगु साहित्य में चित्रित आदिवासी जीवन

2. **रणेन्द्र और वी.चन्द्रशेखर राव :व्यक्तित्व एवं कृतित्व**

2.1 रणेन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

2.2 वी.चन्द्रशेखर राव : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

द्वितीय अध्याय

'गायब होता देश' और आकुपच्चनि देशम्' कथावस्तु

2.1 'गायब होता देश' की कथावस्तु

2.2 'आकुपच्चनि देशम्' की कथावस्तु

तृतीय अध्याय

'गायब होता देश' और आकुपच्चनि देशम्' में चित्रित समस्याएँ

3.1 'गायब होता देश' उपन्यास में चित्रित समस्याएँ

3.1 सामाजिक समस्याएँ

3.2 आर्थिक समस्याएँ

3.3 राजनीतिक समस्याएँ

3.4 सांस्कृतिक एवं धार्मिक समस्याएँ

3.5 विस्थापन की समस्या

3.6 स्त्री समस्या

3.7 पर्यावरण से संबंधित समस्या

3.2 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में चित्रित समस्याएँ

3.2.1 सामाजिक समस्याएँ

3.2.2 आर्थिक समस्याएँ

3.2.3 राजनीतिक समस्याएँ

3.2.4 सांस्कृतिक एवं धार्मिक समस्याएँ

3.2.5 विस्थापन की समस्या

3.2.6 स्त्री समस्या

3.2.7 पर्यावरण से संबंधित समस्या

चतुर्थ अध्याय

'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यासों का तुलनात्मक विश्लेषण

4.1 सामाजिक समस्याएँ

मुंडा और चेंचु जनजातियों की समस्याएँ

4.2 आर्थिक समस्याएँ

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में असमानताएँ

4.3 राजनीतिक समस्याएँ

आधुनिक भारत के जनतंत्र की समस्याएँ

4.4 धार्मिक एवं सांस्कृतिक समस्याएँ

आत्मा और सामूहिकता के प्रश्न

4.5 विस्थापन की समस्या

विकास और संसाधनों की समस्याएँ

4.6 स्त्री समस्या

4.7 पर्यावरण से संबंधित समस्या

4.8 गायब होता देश और आकुपच्चनि देशम् आदिवासी उपन्यासों में चित्रित समानताएँ एवं असमानताएँ

4.8.1 गायब होता देश और आकुपच्चनि देशम् में चित्रित समानताएँ

4.8.2 गायब होता देश और आकुपच्चनि देशम् में चित्रित असमानताएँ

उपसंहार

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

क. आधार-ग्रंथ

ख. सहायक-ग्रंथ

ग. कोश-ग्रंथ

घ. पत्र-पत्रिकाएँ

ङ. वेब-सामग्री

भूमिका

साहित्य विधा में उपन्यासों का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि उपन्यास गद्य की एक ऐसी विधा है जिसमें किसी विस्तृत कथावस्तु को घटनाओं एवं पात्रों के माध्यम से रोचक बनाकर इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि वह एक निश्चित उद्देश्य को व्यक्त करती है।

कहा जाता है कि 'परिवर्तन प्रकृति का नियम' है और समय की प्रवृत्ति के अनुसार उपन्यास का स्वरूप भी बदलता रहा है। साहित्य की समस्त सृजनात्मक विधाओं की तुलना में उपन्यास साहित्य निरंतर प्रवाहमान और गतिशील रहा है। इसी कारण उपन्यास विधा को आधुनिक काल की सर्वाधिक शक्तिशाली, लोकप्रिय और निरंतर विकासशील विधा के रूप में जाना जाता है।

आधुनिक भारत में आज तुलनात्मक अध्ययन का महत्व बहुत ही व्यापक हो गया है। क्योंकि विश्व साहित्य के अध्ययन में अपनी भूमिका के कारण वह अपना महत्व स्थापित करने में सफल रहा है। साहित्य के साथ-साथ सांस्कृतिक अध्ययन की राहे भी अनुवाद की सहायता से तुलनात्मक साहित्य ने खोल दी है। इससे न केवल भौगोलिक अपितु सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक रूप से समाज के समीप आने में मदद मिली है। तुलना करने के लिए दो या दो से अधिक भिन्न भाषाओं, कृतियों, सिध्दांतों, राष्ट्रीय या सांस्कृतिक समूहों के साहित्य का अध्ययन किया जाता है जिससे हमें दो राज्यों के बीच दो मनुष्यों के बीच का विचार-विनिमय होता है | तथा इससे परिवेश का ज्ञान होता है | इसलिए वर्तमान समय में तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता है।

आदिवासी केन्द्रित उपन्यास रणेंद्र द्वारा रचित 'गायब होता देश' और वी. चन्द्रशेखर राव द्वारा रचित 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में आदिवासी लोगों की जीवन गाथा प्रस्तुत की गई है। 'गायब होता देश' उपन्यास के अंतर्गत झारखंड के रांची जिले में निवासित मुंडा

आदिवासी जीवन के संघर्ष और शोषण को प्रधानता दी गयी है और 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में चेंचु जनजाति के दुर्भर जीवन स्थिति को दर्शाया गया है । इस उपन्यास में सत्ता लोभी राजनेता एवं एन.जी.ओ (स्वयंसेवी संस्था) के कार्यकर्ता द्वारा किए गए अन्याय, अत्याचार एवं शोषण को यथार्थ रूप से चित्रित किया गया है । दोनों उपन्यासों में मुंडा और चेंचु आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक, स्त्री-समस्याओं, विस्थापन तथा पर्यावरण से संबंधित समस्याओं का चित्रण किया गया है ।

आदिवासी समाज की संस्कृति, संप्रदाय, आचार-विचार, इतिहास, तथा वर्तमान समय में झेल रहे समस्याएँ, उनके साथ हो रहे अन्याय, अत्याचार, शोषण के स्वरूप का विश्लेषण करना आवश्यक है । इसलिए हिंदी में मुंडा तथा तेलुगु में चेंचु आदिवासियों की जीवन स्थिति, उनकी समस्याओं पर लिखे गये ये दो उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन करना मेरे इस लघु शोध प्रबंध का उद्देश्य है । इसलिए मैंने अपने शोध कार्य के लिए 'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' आदिवासी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन" विषय चुना है ।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध को अध्ययन की सुविधा के लिए मैंने भूमिका और उपसंहार के अतिरिक्त चार अध्यायों में विभक्त किया है ।

प्रथम अध्याय को दो भागों में विभक्त किया गया है । प्रथम भाग- 'आदिवासी साहित्य : अवधारणा, स्वरूप एवं विस्तार' इस अध्याय के अंतर्गत "आदिवासी साहित्य की परिभाषाएँ, उसका स्वरूप एवं विस्तार" को प्रस्तुत किया गया है । 'आदिवासी साहित्य का विस्तार'-के अंतर्गत संथाल, मुंडा, कुडुख, बंजारा और तेलुगु साहित्य में आदिवासी जीवन का संक्षिप्त परिचय दिया गया है । इस अध्याय के दूसरे भाग में 'गायब होता देश' उपन्यास के लेखक रणेंद्र एवं 'आकुपच्चनि देशम्' के लेखक वी.चन्द्रशेखर राव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की विशेषताओं को प्रस्तुत किया गया है ।

द्वितीय अध्याय में 'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' की कथावस्तु के अंतर्गत दोनों उपन्यासों में चित्रित कथाओं के संक्षिप्त रूप को प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय 'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ'- के अंतर्गत दोनों उपन्यासों में चित्रित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक,सांस्कृतिक एवं धार्मिक, स्त्री-समस्या, विस्थापन तथा पर्यावरण से संबंधित समस्याओं का विश्लेषण किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में 'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यासों का तुलनात्मक विश्लेषण' किया गया है। इसके अंतर्गत दोनों उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांकृतिक एवं धार्मिक, स्त्री-समस्या, विस्थापन तथा पर्यावरण से संबंधित समस्याओं का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

सर्वप्रथम मैं हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं शोध निर्देशक प्रो.आर.एस सर्राजु का आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मेरे शोध-कार्य को उचित मार्गदर्शन देकर प्रोत्साहित किया | साथ ही मैं विभाग के अन्य गुरुजनों के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ|

इस सन्दर्भ में मैं अपने माता-पिता के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझती हूँ। मेरे पति सुरेश बाबु और परिवार के सभी सदस्यों ने मुझे सहयोग दिया है | उन के प्रति भी मैं आभारी हूँ | इन्होंने मुझे उच्च शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्रदान किया | मैं अपने मित्रों के प्रति भी आभारी हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्य के लिए समय-समय पर मदद की।

प्रथम अध्याय

'आदिवासी साहित्य' : अवधारणा, स्वरूप एवं विस्तार

1. 'आदिवासी' शब्द की अवधारणा:

'आदिवासी' शब्द भारतीय सन्दर्भ में एक विशिष्ट स्थिति को स्पष्ट करने वाला शब्द है। भारतीय समाज के प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक आदिम समूहों, वनवासियों, गिरि-कन्दराओं में रहने वालों का उल्लेख मिलता है । वैदिक एवं उत्तरवैदिक काल तथा महाकाव्य काल में आदिवासी नाम का शब्द उल्लेखित है ।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में आदिवासियों का महत्वपूर्ण स्थान है । आदिवासी आदिम समाज के सटीक उदाहरण माने जाते हैं । आदिम अर्थात लोकजीवन का प्राचीनतम स्वभाव विविध परम्परा, रहन-सहन, उत्सव, त्यौहार, भाषा, सामुदायिक जीवन आदि उनके नैसर्गिक परिपूर्ण आनंद से ही हमें पता चलता है कि उनकी विविध रंगी संस्कृति दर्शन एवं उनकी जीवन शैली विशिष्ट मानी जाती है । जनजातिय लोग आम भाषा में आदिवासी कहलाते है ।

आदिवासी, जनजाति, आदिमजाति, वनवासी एवं गिरिजन, प्राचीन निवासी जैसे अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग अंग्रेजी शब्द 'ट्राइब्स' के भारतीय हिंदी अनुवाद के रूप में होता है। भरतीय सन्दर्भ में जनजाति के साथ-साथ अनुसूचित जनजाति शब्द का प्रयोग भारतीय समाज की एक अन्य विशेषता है । सामान्यत: किसी भी सूचीबद्ध जनजाति शृंखला को अनुसूचित कहा जा सकता है, किन्तु जब वह शब्द भारतीय जनजातियों के साथ प्रयुक्त होता है । आदिवासी विश्व में लग-भग सभी भागों में निवास करते हैं । भारत में आदिवासियों की आबादी अफ्रीका के बाद सर्वाधिक है । ऐसा विश्वास किया जाता है कि ये लोग भारतीय प्रायद्वीप के मूल निवासी हैं। मूल निवासी होने के कारण इन्हें सामान्यत 'आदिवासी' कहा जाता है ।

डॉ. विनायक तुमराम 'आदिवासी कौन?' शीर्षक लेख में लिखते हैं कि–"वर्तमान स्थिति में 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग विशिष्ट पर्यावरण में रहनेवाले, विशिष्ट भाषा बोलनेवाले, विशिष्ट जीवन पद्धति तथा परम्पराओं से सजे और सदियों से जंगलों-पहाड़ों में जीवनयापन करते हुए अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को सम्भालकर रखनेवाले मानव-समूह का

परिचय करा देने के लिए किया जाता है।"[1] इस प्रकार विशिष्ट परिवेश, भाषा, जीवन पद्धति एवं अपनी परम्परा, धर्म एवं संस्कृति के प्रति सचेत मानव समुदाय जो जंगल एवं पहाड़ों में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

'आदिवासी' शब्द के समान्तर अनेक शब्दों का प्रयोग होता आ रहा हैं। इसके लिए अनेक विद्वानों ने अलग-अलग नामों से संबोधित किया हैं "रिजले, लेके, ग्रिगसन, मार्टिन तथा ए.वी.थक्क़र ने उन्हें आदिवासी (एबारिजिन्स) नाम से पुकारा है तथा हट्टन ने इन्हें आदिम जातियाँ (प्रिमिटिव ट्राइब्स) का नाम दिया, तथा सर बेन्स इन्हें 'पर्वतीय जनजातियाँ' (हिल ट्राइब्स) की संज्ञा दी है।"[2] महात्मा गाँधी ने इन्हें बहुत पहले ही 'मूल निवासी' संज्ञा से अभिहित किया था। सुप्रसिध्द समाज सेविका कुसुम नार गोलकर एवं श्याम नार गोलकर ने इन्हें जंगल का राजा कहा है, इसके साथ-साथ प्रसिध्द समाजशास्त्री डॉ. घुरये ने उन्हें आदिवासी तथा इनके लिए अनुसूचित जनजातियाँ (शिड्यूल्ड ट्राइब्स) नाम से प्रस्तावित किया जो कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के अंतर्गत स्वीकार किया गया है।

आदिवासी समाज अन्य समाज से कुछ भिन्न है। आदिवासियों की दृष्टि में कोई व्यक्ति या समुदाय तभी भूमि से जुड़ता है जब वह अपने पूर्वजों से लेकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी उस जमीन पर बसा हुआ हो। आदिवासीयों का क्षेत्र उसकी सामूहिक चेतना का विस्तार होता है, जिसका अपना सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक महत्त्व है।

1.1 परिभाषाएँ :-

'आदिवासी' शब्द की स्पष्ट परिभाषा देना अत्यंत कठिन कार्य है। 'आदिवासी' की निश्चित परिभाषा विद्वानों ने नहीं की हैं क्योंकि आदिवासी समाज की कोई भी पूर्ण रूप से मान्य परिभाषा अब तक प्रचलित नहीं हो पाई है। वैसे समय-समय पर 'आदिवासी' शब्द की विभिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं परन्तु ये परिभाषाएँ केवल विशेष परिस्थिति को सूचित करने वाले शब्द ही हैं। किसी जनजाति के लिए फिर भी ये उपयुक्त सिध्द हो सकती हैं। एक जनजातीय समाज दूसरे जनजातिय समाज से भिन्न होता है। आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, भाषाई तथा जनसंख्या के आधार पर इनकी विशेषताएँ अलग-अलग होती हैं। इस देश के मानवशास्त्री, समाजशास्त्री, समाजसेवक, देशी-विदेशी विद्वानों ने एवं आदिवासी जनजाति के विद्वानों ने 'आदिवासी' संज्ञा को अनेक तरह से परिभाषित किया है।

---

[1]आदिवासी कौन, सं.रमणिका गुप्ता, (आदिवासी कौन, डॉ. विनायक तुमराम) 26-27

[2]सर बेंस , इथ्नोग्राफी ,पृ.112-113

भारत के प्रसिध्द मानवशास्त्री **डॉ.मजूमदार** के अनुसार– "आदिवासी जनजाति परिवारों तथा पारिवारिक वर्गों का एक ऐसा समूह है जो सामान्य नाम धारण किए हुए हैं । इसके सभी सदस्य एक ही भूमि पर वास करते हैं और एक ही भाषा–भाषी, विवाह की प्रथाओं तथा कारोबार संबंधी एक ही नियम का पालन करते हैं । वे आदान-प्रदान संबंधी पारस्परिक व्यवहार को विकसित करते रहते हैं । साधारणतः आदिवासी जनजाति अंतर्विवाह सिध्दांत का समर्थन करते हैं और उसके सभी सदस्य अपनी ही जनजाति के अंतर्गत विवाह करते हैं । कई गोत्र के सदस्यों का परस्पर रक्त-संबंध जुडा होता हैं इनमें या तो अनेक लघु वर्ग वृहत वर्ग में सम्मिलित हो जाते है अन्यथा उनके वंश का परंपरागत सरदार होता है, इसी दृष्टि से जनजाति को एक राजनीतिक संघ भी मना जाता है।"[3]

जेकब्स और स्टर्न के अनुसार– "एक ऐसा ग्रामीण समुदाय या ग्रामीण समुदायों का एक ऐसा समूह जिसकी समान भूमि हो, समान भाषा हो, समान सांस्कृति हो जिस समुदाय से व्यक्तियों का जीवन आर्थिक दृष्टि से एक-दूसरे से ओत-प्रोत हो जनजाति कहलती है ।"[4]

रिचार्ड का कथन हैं कि- "जनजाति एक ऐसे समूह का नाम है जो आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर होता है, समान भाषा बोलता हैं और जब किसी बाहर के शत्रु का सामना करना होता है, तब इस समूह के सब लोग मिलकर एक हो जाते हैं ।"[5]

डब्ल्यू.एच.आर.रिवर्स के अनुसार– "आदिम जाति एक अत्यंत साधारण कोटि का सामाजिक समूह होता है जिसके सदस्य एक साधारण भाषा बोलते हैं उसकी एक शासन-प्रणाली होती है तथा सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तथा युध्द इत्यादि की स्थिति में एकता का प्रदर्शन करते हैं ।"[6]

क्रोबर के अनुसार–"आदिम जातियाँ ऐसे लोगों का एक समूह होती हैं, जिनकी अपनी एक सामान्य संस्कृति होती है । मानव-विज्ञान के क्षेत्र में संस्कृति की अवधारणा के अनुरूप आदिम

[3]भारत की जनजातियाँ, डॉ.शिवतोष दस, पृ.75
[4]आदिवासियों के बीच, श्रीचन्द्र जैन, पृ.17
[5]वही, पृ.17
[6]आदिवासियों के बीच, श्रीचन्द्र जैन, पृ.18

जाति के सदस्यों का एक ही सामान्य संस्कृति का अंग होना उनका एक अत्यंत महत्वपूर्ण लक्षण है ।"[7]

इससे यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी समुदाय की परिभाषा के विषय में विद्वानों में मत भेद है, परंतु सबकी राय यही है कि आदिवासी जनजाति का विशेष भू-भाग से संबंध होता हैं ।

1.2 'आदिवासी साहित्य' का स्वरुप :

'आदिवासी' शब्द भारतीय सन्दर्भ में एक विशिष्ट स्थिति को स्पष्ट करनेवाला शब्द है । भारतीय समाज के इतिहास पूर्व काल से लेकर आज तक आदिम समूहों, वनवासियों, गिरि-कन्दराओं में रहने वालों का उल्लेख प्राप्त होता है ।

आदिवासी साहित्य के स्वरूप के विषय में डॉ.विनायक तुमराम ने 'आदिवासी साहित्य क्या है?' नामक अपने लेख में विस्तार पूर्वक विवेचन करते हुए लिखा हैं कि- "आदिवासी साहित्य वन संस्कृति से संबंधित साहित्य है। यह आदिवासी साहित्य उन वन-जंगलों में रहने वाले वंचितों का साहित्य है जिनके प्रश्नों का अतीत में कभी उत्तर ही नहीं दिया गया। यहाँ ऐसे दुर्लक्षितों का साहित्य है जिनके आक्रोश की ओर यहाँ की समाज-व्यवस्था ने कभी ध्यान ही नहीं दिया। यह गिरि-कन्दराओं में रहनेवाले अन्याय ग्रस्तों का क्रांति-साहित्य है। यहाँ की क्रूर और कठोर न्याय-व्यवस्था ने जिनकी सैकड़ों पीढ़ियों को आजीवन वनवास दिया, उस आदिम समूह का मुक्ति-साहित्य है। यह वनवासियों का क्षत जीवन जिस संस्कृति की गोद में छुपा रहा,यह साहित्य उसी संस्कृति के प्राचीन इतिहास की शुरुआत करने वाला साहित्य है । आदिवासी-साहित्य इस भूमि से प्रस्तुत आदिम-वेदना तथा अनुभव का शब्द रूप है ।"[8]

आदिवासी साहित्य विस्थापन, अपमान एवं शोषण के शिकार, आदिवासी लोगों की चिंता और वेदना को प्रकट करता है। "ऐसे विषम हालत में जब पूरे भारत के आदिवासी समूदाय के सामने जीवन-शैली खतरे में हो, उनकी भाषओं की मृत्यु हो रही तब वह और उसका साहित्य यदि विद्रोह और असहमति की भाषा में बोलता हो, तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए ।"[9]

---

[7]वही, पृ.18

[8]आदिवासी साहित्य यात्रा, (सं)रमणिका गुप्ता, आदिवासियों की अब तक की साहित्य यात्रा, डॉ. विनायक तुमराम –पृ. 24

[9]आदिवासी-अस्तित्व अस्मिता और साहित्य, वर्तमान साहित्य, जून 2005, पृ. 22

आदिवासी साहित्य दिनों दिन विद्रोह का रूप लेते जा रहा है क्योंकि वनवास से मुक्ति का यह संकल्प है । आदिवासी साहित्य के बहाने तो इन पीड़ाओं से मुक्ति की राह मिल रही है। आदिवासी साहित्य से नव-निर्माण का स्वप्न-बीज अंकुरित हो रहा है। पहाड़ों की गोद में कटीली झाड़ियों में बस्ती-बस्ती में जिनके जीवन का हर क्षण शृंखलाबध्द हुआ है, यह साहित्य ऐसे ही जंगलवासियों को मुक्ति की आशा दिलाता है ।

आदिवासी साहित्य मानवीय मूल्यों वंचितों और उपेक्षितों के अधिकारों की स्थापना और मानवीय संवेदना को उढेलने की एक नए ढंग से कोशिश करता है अतः इस साहित्य में आदिवासियों के जीवन का स्वप्न भी मौजूद है। "आदिवासी साहित्य जीवनवादी साहित्य है । आदिमों के सर्वांगीण उत्थान का सवाल लेकर यह साहित्य स्थापित समाज व्यवस्था को ललकार रहा है। साथ ही यह आदिमों की सामाजिक-रचना और एकात्म-जीवन का विचार भी रखने लगा है। इस साहित्य का स्वप्न ऐसे आदिम समूहों में वर्गरहित, जातिरहित, समाज-व्यवस्था की रचना की जाय, जो जीवन मूल्य आदिवासियों के थे ही नहीं ये उन्हें कभी नहीं स्वीकारेंगे ।"[10]

आदिवासी साहित्य का स्वरूप व्यापक है चाहे वह कुडुख जनजाति पर लिखा गया साहित्य हो अथवा गोंड, भील, मुंडा, परधान, कोलाम, महादेव, कोली, वारली आदि किसी भी अन्य जनजाति पर लिखा साहित्य हो, उन सब का समावेश आदिवासी साहित्य में है । संसार में जहाँ-जहाँ आदिम समूह रहते है, उनसे संबंधित सारा साहित्य आदिवासी साहित्य में समाविष्ट होगा । यह साहित्य अब तक के वेदना से भरे संसार का दर्शन कराने वाला साहित्य है । आज का आदिवासी साहित्य नए जागरण का काल है। आधुनिक युग में शिक्षा अर्जन की वजह से इन लोगों के बीच चेतना पैदा हुई । अब आदिवासी अपने समाज के बारे में स्वयं ही रचना करने लगे हैं जिसमें उन्होंने अपने लोगों के जीवन विधान संस्कृति एवं समस्याओं को दिखाया है। आज कल आदिवासी जीवन पर अधिकतर रचनाएँ हो रही हैं। इस साहित्य के माध्यम से जनजाति के समूहों में जागृति की भावना उत्पन्न होने लगी है। हर क्षेत्र में आदिवासी साहित्यिक स्वरूप का विकास क्रम बढ़ रहा है ।

1.3 'आदिवासी साहित्य' में उभरती आंतरिक चेतना :

आदिवासी समाज सभ्य समाज से पृथक है। आदिवासी साहित्य कोई आधुनिक कला अथवा वर्तमान सदी की उपजी आत्मिक अभिव्यक्ति नहीं है । आदिवासी साहित्य का इतिहास

[10]आदिवासी साहित्य यात्रा, रमणिका गुप्ता,पृ.25

इतना पुराना है, जितनी पुरानी यह सभ्यता है । सभ्यता के आरंभिक काल से ही यह आदिवासी साहित्य लोक गीतों, लोक कथाओं में विद्यमान है। आधुनिक समय में इस साहित्य ने प्रतिरोध की प्रवृत्ति को ग्रहण किया है, जिसके अनेक कारण हैं । स्वतंत्र संग्राम के समय अनेक आदिवासी विद्रोह इसके उदाहरण है। विस्थापितों द्वारा अपनी संस्कृति को नष्ट करने अपने संसाधनों पर कब्जा जमाने के षडयंत्रों के विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना आज के इस साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति है । रणेंद्र लिखते हैं कि "अभी तो आप आए ही हैं । देखिएगा कि मक्का की एक बरसाती फसल के भरोसे जिंदगी कितनी कठिन हो जाती है। मजूरी और जंगल का सहारा जो नहीं हो तो लोग फिर आसाम-भूटान निकल जाएँ लेकिन एक तरफ़ इन खानों में मजूरी दी तो दूसरी तरफ़ बर्बादी के सरंजाम भी खड़े किए। पिछले पच्चीस-तीस सालों में खान-मालिकों ने जो बड़े-बड़े गड्ढ़े छोड़े है, बरसात में इन गड्ढ़ों में पानी भर जाता है और मच्छर पलते हैं। सेरेब्रल मलेरिया यहाँ के लिए महामारी है, महामारी। मुड़ीकटवा से साल-दो साल पर भेंट होती है किन्तु इस जानमारू से तो हर रोज़ भेंट होगी।"[11] यह केवल असुर जाति का वास्तविक सत्य नहीं बल्कि समस्त आदिवासियों के जीवन का सत्य है । जिस समाज में जाति ने प्राचीन काल से प्रकृति के संग जीवन व्यतीत किया, अपने जीवन को प्राकृतिक नियमों में ढाल लिया हो, वह समाज विस्थापितों के षडयंत्रों का शिकार जब हो रहा हो, तब स्वभाविक ही है कि वे अपने आधिकार हेतु संघर्ष करें। हिंदी में आदिवासी साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा है। वह साहित्य प्रकृति सुलभ सहज जीवन का साहित्य है । वह प्रकृति के सह-अस्तित्व को स्वीकार करता है और छल, कपट, दंभी आदि भेद-भाव से दूर रहता है। आदिवासी जीवन की समस्याएँ और प्रकृति के प्रति लगाव उनके साहित्य का आधार है तथा अन्याय के प्रति प्रतिरोध की भावना आदिवासी साहित्य में अभिव्यक्त हुई है ।

आज के आदिवासी साहित्य ने परम्परागत आधार तत्वों को अपने में मिलाकर कुछ भिन्न-सा स्वरूप ग्रहण किया है। वर्तमान साहित्य में इसकी चेतना अधिक समृद्ध एवं प्रगतिशील है । वह नई विचारधाराओं और क्रांतियों से परिचित हुआ है, जिसके परिप्रेक्ष में वह अपनी नई पुरानी स्थितियों को तोलने लगा है। उसमें अस्तित्व की वर्तमान स्थिति एवं अन्याय बोध का भाव जागृत हुआ है "आखिर हमारी छाया से भी क्यों चिढ़ते हैं ये लोग? माड़-भात खिलाकर, अधपढ़-अनपढ़ शिक्षकों के भरोसे, फुसलावन स्कूल के हमारे बच्चे, ज्यादा-से-ज्यादा स्किल्ड लेबर, पिऊन, क्लर्क बनेंगे और क्या? यही हमारी औकात है। हमारी ही छाती पर ताजमहल

[11] ग्लोबल गाँव के देवता, रणेंद्र -13

जैसा स्कूल खड़ा कर हमारी हैसियत समझाना चाहते हैं लोग।"[12] यह अन्याय का बोध होना कोई साधारण बात नहीं वह आज अपनी सामाजिक समस्याओं को कलम से व्यक्त कर अपनी संस्कृति, भाषा और अपनी उदात्त जीवन शैली की अभिव्यक्ति से हिंदी ही नहीं विश्व साहित्य के विकास में अपनी भूमिका निभा रहा है ।

आदिवासी साहित्य की पहचान का आन्दोलन और अपनी संस्कृति, भाषा, जल,जंगल, जमीन को बचाने की मुहिम है। वह अपने समाज की विकृतियों को भी दूर कर आज के समाज के समक्ष सशक्त खड़ा होना चाहता है। आदिवासी साहित्य परम्परागत सामाजिक मानदंडो को तिलांजलि देते हुए व्यापक मानवता की स्थापना करने की सजग पहल करती है ।

1.4 'आदिवासी साहित्य' का विस्तार :

आदिवासी साहित्य के विस्तार की प्रक्रिया बहुत पुरानी है, इतनी पुरानी कि जितनी यह मानव सभ्यता पुरानी है। जब मनुष्य कुछ गुन गुनाने लगा तभी से आदिवासी साहित्य की शुरुआत हुई ऊपर नीले आकाश की छत, नीचे हरी धरती, चारों ओर हरियाली, नीले पहाड़ और जलाशय, पशु-पक्षियों की ध्वनीयों से गुंजित मुक्त परिसर में यह साहित्य अपने आपको इतना विस्तारित किया है कि आज केवल भारतवर्ष में तीन सौ से अधिक भाषाओं में जीवंत है । सोने के लिए धरती, सिरहाने पत्थर ; ओढ्ने को तारों से भरा आकाश, खाने के लिए कंदमूल तथा कमर पर शर्म छिपाने हेतु बित्तीभर लंगोटी बस इसी जीवन संसार में जीता जागता साहित्य आदिवासी साहित्य है । लेकिन यह अमूल्य साहित्य जातियों, संस्कृतियों में बिखरा पड़ा है। आज इसे संकलित करने की अत्यंत आवश्यकता है। यह विशाल साहित्य अनेक रूपों में भावों में तथा अभिव्यक्ति की अनेक कलाओं में विद्यमान है ।

आदिवासी जनजातियाँ मुख्य रूप से भारत के कई क्षेत्रों में पाई जाती है । आन्ध्रप्रदेश, तेलंगाना, बिहार, झारखंड, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, केरल, ओड़िसा, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, मिजोराम, मेघालया, आदि क्षेत्रों में आदिवासी जनजातियाँ दिखाई देती है । मुख्य रूप से 'मुंडा' जाति आग्नेय परिवार की एक महत्वपूर्ण प्रजाति है, उनकी भाषा मुंडारी है, ये झारखंड, बंगाल, उड़ीसा, और छत्तीसगढ़ के जंगलों-पहाड़ों में रहते हैं। झारखंड में 'मुंडा' जनजाति की अपनी विशिष्ट पहचान बन गई है। गोंड आदिवासी मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में बहुलता से पाई जाती है, लेकिन इनका प्रसार

[12]ग्लोबल गाँव के देवता, रणेंद्र -19

देवगढ़, मंडाला, चांदा, कोरापुर, आदिलाबाद आदि क्षेत्रों में पाई जाती है। संथाल आदिवासी का मुख्य निवास बिहार का संथाल परगना है, ये पश्चिम बंगाल, और अन्य क्षेत्रों में भी पाई जाती है। आदिवासियों की अनेक जातियाँ कबीलाई जीवन शैली में अरण्यमुखी संस्कृति और उत्सव धर्मिता के कारण आर्थिक अभाव में कंगाल बनी है। यह अज्ञानी, अनपढ़ और अंधश्रध्दालु हैं, इसलिए इनके समाज में चारों ओर से शोषण हो रहा है । आदिवासी साहित्य कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि विधाओं के माध्मम से लगातार अभिव्यक्त हो रहा है । आदिवासी साहित्य अनेक भाषा-बोलियों में विस्तृत रूप से विद्यमान है । यह साहित्य संथाली, कुडुख, खड़िया, बोडो, राभा, कोको, मिजो, बंजारा, लंबाडी आदि भाषा, बोलियों में हैं ।

1.4.1 संथाली साहित्य :

संथाली भाषा भारत के पूर्वी क्षेत्रों में रहने वाले संथाल आदिवासियों की मातृ भाषा है । संथाली भाषा-भाषी लोग मुख्यत: झारखंड, बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल और असम राज्यों में रहते है । इस साहित्य को दो भागों में बाँटा जा सकता है 1.लोक साहित्य 2.शिष्ट साहित्य, लोक साहित्य के अंतर्गत लोक कथा, लोक गाथा और पौराणिक मिथक, तत्व शास्त्रीय मिथक, सामजिक और आख्यानपरक मिथक आते हैं । शिष्ट साहित्य लिखित रूप में मिलता है इसके भी दो भाग है 1.पद्यसाहित्य 2.गद्य साहित्य पद्यसाहित्य के अंतर्गत महाकाव्य, खंड काव्य और मुक्तक काव्य होते हैं। गद्य साहित्य के अंतर्गत कहानी, नाटक, एकांकी, उपन्यास, ललित निबन्ध, यात्रावृतांत, जीवनी, आत्मकथा आदि गद्य की विधाएँ होती है । संथाली साहित्य की दो मुख्य धाराएँ है प्राचीन और नवीन । प्राचीन कवियों ने महाकाव्य, खंड काव्य, गीति काव्य लिखा था। इसमें महा कवि रामदास टुडू आदि आते हैं। नवीन कवियों और लेखकों ने वर्तमान सामाजिक दिशाबोध को धर्म व संस्कृति की रक्षा शोषण और अत्याचार-मुक्त समाज, विस्थापन की समस्या और जल, जंगल, जमीन पर अपने अधिकार के सवालों को अपनी रचना का केंद्र बनाया है। संथाली भाषा में कथा साहित्य समृद्ध है । इसमें उपन्यास और कहानी संग्रह मुख्य है सर्वश्री हृदय नारायण मंडल, टी.के.रापाज, रूप नारायण आदि उन भाषा के प्रसिद्ध रचनाकार हैं ।

लोक साहित्य में संथाल समाज में जन्म से मृत्यु तक विवाह, श्राद्ध आदि जातिय संस्कार और वर्ष भर में सोहराय, बाहा, एरोकू आदि अनेक त्यौहारों का वर्णन किया गया हैं। उन संस्कारों और त्यौहारों के अवसरों पर इन लोगों में नृत्य,गीत-संगीत की धूम रहा करती है। इस प्रकार संथाली में दोड़, लांगडे, सोहराय, बाहा भिन्नसार, मातवार इत्यादि नामों में विभिन्न

रागों और भावों के लोकगीत प्रचुरमात्रा में प्रचलित है इसके अलावा पत्र-पत्रिकाएँ, नाटक, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ आदि रूपों में एक ऐसा साहित्य है जिसकी तुलना संसार की किसी भाषा के साहित्य से हो सकती है ।

1.4.2 कुडुख (उराँव) साहित्य :

उराँव क्षेत्र झारखंड राज्य के दक्षिण-पश्चिम में सोन-महानदी के निकट के पहाड़ी क्षेत्र में स्थित यह सारा क्षेत्र घने जंगलों से घेरा हुआ है । कुडुख जाति का इतिहास चार हजार वर्ष का लंबा इतिहास आर्यों, तुर्की, अंग्रेजों और जमींदारों से युद्ध संघर्ष और विद्रोह का इतिहास है । इनका इतिहास लिखित रूप में प्राप्त नहीं होता लेकिन लोक परम्पराओं में गीत एवं कथा के माध्यम से इनका इतिहास आज भी जीवित है । उनके गीतों में युद्ध वर्णन की प्रवृत्ति विशेष है । उरावं जाति के लोक गीतों ने उनके साहित्य को जीवन्तता प्रदान किया है। उनके गीतों में मानव जीवन की घटनाओं का विस्तृत समावेश है। इन घटनाओं में जन्म, विवाह मृत्यु के साथ-साथ जीवन के उल्लास मानवीय भावों विचारों एवं परिस्थितियों से संबंधित विविध विषयों का चित्रण किया गया हैं। इनका न कोई निर्माता है, न स्वर संधाता । वह तो मानव समुदाय में सहज ही स्वयं उद्धरित हो उठा है और बिना प्रयास के सहज ही कंठ-से-कंठ उतरती हुई अपनी परम्परा स्थापित करता रहा है। लोक गीतों के अलावा इस भाषा में कुछ प्रकीर्ण साहित्य रखा गया है ।

1.4.3 मुंडा साहित्य :

मुंडा आग्नेय परिवार की एक महत्वपूर्ण प्रजाति है । इस प्रजाति में मुंडारी बोली जाती है। झारखंड, बंगाल, उड़ीसा और छत्तिसगढ के जंगलों-पहाड़ों में मुंडा परिवार के लोग रहते हैं । झारखंड में मुंडा जनजाति की अपनी विशिष्ट पहचान बन गई है। मुंडा के दो शाखाएं हैं, एक शाखा संताल- संताल परगना में और दूसरी मुंडा राँची के पश्चिम घाटियों में पाए जाते हैं । मुंडा के आर्थिक जीवन की चार अवस्थाएँ है, 1.शिकार और भोजन एकत्र करने की अवस्था 2.झूम-कृषि 3.कृषि (हल-बैल और औजारों से) 4. उद्योग का विकास। उन्होंने जंगलों को काटकर, पहाड़ों को तोडकर, कठिनाई से छोटे-छोटे खेत बनाएं है, उसमे धान पैदा करते है, मछुआ, गोद्ली पल्थी और सुरगुजा, शेष अभाव की पूर्ति ने जंगलों के कंदमूल, साग-पात, फल-फुल, महुआ और साखू के पत्ते से पूरी करते हैं । सुरेन्द्र प्रसाद सिंह अपनी कृति 'लाइफ एंड टाइम्सआफ

बिरसा भगवान' में लिखते है-"बिरसा मुंडा एक महान पुरुष,विराट नेता थे। बिरसा मुंडा का अध्ययन करने का प्रयास वस्तुत: मुंडा नामक महान जाति के इतिहास, संस्कृति उनकी आकांक्षाओं उनके सुख-दु:ख का अध्ययन करने के समान है। छोटानागपुर के पहाड़ी क्षेत्र के निवासी मुंडा लोगों को पिछड़ा शान्तिप्रिय और अज्ञानी महत्वहीन समुदाय मानना भ्रान्तिपूर्ण सोच है। उनका अध्ययन उनके जीवन के विविध पहलुओं को उदघाटित करता है, इससे मुंडा लोगों को पहली बार अपना प्रामाणिक लिखित इतिहास मिलेगा। अपना इतिहास जानने से उनमें उन्नति की एक ताजा हुलास जन्म लेगी।"[13]

मुंडाओं की संस्कृति खेतीहर, ग्रामीण संस्कृति है। इनको प्रकृति के पुजारी कहा जाता हैं । कहते हैं कि "वन ही मुंडा के अनेक आविष्कारों के स्त्रोत हैं। वन के ही अगाध रत्नाकर से अमूल्य रत्न की खोज की है। मुंडा जनजाति ने वनजीवन के अनुभव ही उनकी जन सांस्कृतिक चेतना की विभूतियाँ है ।"[14] मुंडा-संस्कृति सही अर्थों में अरण्यक है । इस संस्कृति में विकेन्द्रित और परम्परावलम्बी जीवन-प्रणाली के अक्षय-तत्व निहित हैं ।

1.4.4 बंजारा/लंबाडा साहित्य :

बंजारा साहित्य पर अनेक कार्य हुए हैं। डॉ.यशवंत जाधव ने 'बंजारा जाति समाज और संस्कृति' नामक पुस्तक 1992 में लिखा है इसमें विस्तार से इस जाति के समाज और संस्कृति का विश्लेशण किया गया है । इस बोली का सहित्य लोक कथाओं, गीतों, और भजनों में विद्यमान है। इस बोली में लोक गीत अपनी सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पहचान बनाते हैं। यह आदिवासी के गीत मुख्यत: ऋतुओं पर आधारित होते हैं। इन जातियों की मुख्य रूप से घुमक्कड़ प्रवृत्ति रही है। ये देश-विदेशों में भ्रमण करते हुए अपने मौखिक साहित्य को समृद्ध करते रहे हैं। पूर्णिमा एवं अमावस्या के समय चान्दिनी रात अथवा अंधेरी रात होती है। घुमक्कड़ प्रवृत्ति के कारण यात्रा में आनेवाली बाधाएँ एवं चुनौतियों का सामना करते थे । इस का वर्णन निम्न गीत में विद्यमान है –

रात अन्देरी ये दीवलों बाले लीजों,

कुतेरा भसीय यें हाडे-हाडे करलीजों ,

पानिरो टो-टो यें झारी भरेलिजों ,

[13]आदिवासी लोक, (सं) रमणिका गुप्ता, मुंडा संस्कृति एवं इतिहास, प्रो.एन. चन्द्रप्पा, पृ.114
[14]लोकायत और जनजातीय संस्कृति, रामप्रवेश सिंह पृ. 256

लकडिरों टो-टो यें भारा बांधेंलिजों ।

भावार्थ यह है कि- इस गीत में यात्रा की चुनौतियों का सामना करने की पूर्व तैयारी है । यह गीत दीपावली त्यौहारके समय गाया जाता है, चूँकि दीपावली की रात अमावस्या की रात होती है। इस गीत में लड़कियाँ कहती हैं कि रात अंधेरी है, दिया लगाया जाये, यात्रा में पानी नहीं मिलेगा। इसलिए पानी की कमंडल भर ली जाये। खाना पकाने हेतु इंधन की आवश्यकता होगी अत: लकडियों को साथ में रखना होगा। लोक कथाएँ और लोक गीतों में बंजारा लोगों का इतिहास भरा पड़ा है। विवाह, त्यौहार, पूजा-पाठ आदि सन्दर्भ से इसका साहित्य समृद्ध हुआ है।

1.4.5 तेलुगु साहित्य में चित्रित आदिवासी जीवन :

तेलुगु साहित्य अत्यंत प्राचीन एवं समृद्ध है । तेलुगु साहित्य की परम्परा 11 वीं शताब्दी के आरंभ से शुरू होती है। तेलुगु के आदिकवि नन्नय्य भट्ट ने 'संस्कृत महाभारत' का अनुवाद तेलुगु पद्य में किया था। इन्होंने 'आंधश्ब्द चिंतामणि' के नाम से तेलुगु व्याकरण ग्रंथ की रचना संस्कृत शब्दों में किया था। तेलुगु साहित्य के आदिकवि नन्नय्य ही इस भाषा के प्रथम वैयाकरण सिद्ध हुए थे। व्याकरण के रचयिता होने के कारण इन्होंने 'वागनुशासन' के नाम से प्रख्यात हुए थे । उनके 'आदि पर्व' एवं 'सभापर्व पूर्ण' और 'अरण्यपर्व' के भाग मिलते हैं। इसके साथ-साथ तिक्कन सोमयाजी, तथा एर्राप्रगड्डा(एरन्न) कवियों से महाभारत की रचना पूर्ण हुई थी। इसलिए महाभारत के इन तीनों कवियों ने 'कवित्रयम' के नाम से प्रसिध्द थे ।

तेलुगु साहित्य अधिकांशत: संस्कृत साहित्य से प्रभावित है, फिर भी उसमें मौलिक सृजन पर्याप्त मात्रा में हुआ। तेलुगु साहित्य में 'मार्ग कविता' यानी 'संस्कृतमय कविता' और 'देशी कविता' यानी व्यावहारिक शब्दों की कविता की गयी थी। मार्ग कविता में 'पुराण साहित्य' का निर्माण हुआ तथा देशी कविता में 'द्विपदा साहित्य', 'जनपद साहित्य' का निर्माण हुआ। इसी बीच 'नाटक साहित्य, 'प्रबंध साहित्य' का भी निर्माण हुआ ।

काव्य काल में महाकवि श्रीनाथ प्रसिध्द माने जाते हैं। इन्होंने 'विद्व्दोंषध नैषधीय चरित' का पद्यानुवाद किया था। इनकी अन्य कृतियाँ 'शालिवाहन सप्तशती', 'भीमखंड', 'हरविलास'आदि हैं। द्विपद में छंद 'पलनाटिवीर चरित्रमु' और कई चाटूक्तियाँ तथा मौलिक रचनाएँ भी इन्होंने की थीं। इस काल के प्रसिद्ध कवियों में ताल्ल्पाक अन्नमाचार्य ने भगवान तिरुपति बालाजी की स्तुति में 16 वर्ष की अवस्था में हजारों पद ताम्र पत्रों में लिखें हैं। इस युग में प्रसिद्ध कवि पिल्ललमरि पिन विरन्न, भक्त वेमन्न, पिंगलि सुरन्न आदि कवि थे । कवयित्रियों

में कुम्मरि मोल्ल तेलुगु साहित्य में प्रथम कवयित्री थी जो कि कुम्हार जाति की स्त्री थी। इनकी रामायण 'प्रसाद गुण' से ओत-प्रोत है। इनके पूर्व 'तिरुमलूक्कं' नाम की कवयित्री भी प्रसिद्ध थी ।

आधुनिक काल में तेलुगु साहित्य का महत्व सुप्रसिद्ध रहा है। इस युग में अंग्रेजी भाषा के विद्वान सी.पी ब्राउन ने तेलुगु की बड़ी सेवा की थी। इनका 'निघंटू' (कोश) तेलुगु से अंग्रेजी में लिखा गया एक प्रसिद्ध कोश है । तेलुगु साहित्य में सी.पी ब्राउन का यह योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

तेलुगु साहित्य के आधुनिक काल में कंदुकुरि विरेशलिंगम् पंतुलु उदारहृदय, समाजसेवी तथा विद्वान् थे। ये हिंदी साहित्य के रचनाकार भारतेंदु हरिश्चंद्र की तरह समाज सुधारक थे। इन्होंने कई नाटक, उपन्यास, काव्य आदि ग्रंथ लिखकर साहित्य के प्रत्येक मार्ग को प्रशस्त किया था । इन्होंने समकालीन समाज में स्थित आचार-विचार, अंधविश्वासों की आलोचना करते हुए 1878 में 'राजशेखर चरित्र' नामक उपन्यास की रचना की और 'विवेक वर्धिनी' नामक अपने ही पत्रिका में धारावाहिक की रचना के रूप में प्रकाशित किया था। 1883 में रचित 'सत्यवती चरित्र' नामक उपन्यास तेलुगु साहित्य का प्रथम सामाजिक उपन्यास माना जाता है। सन् 1910 से काव्य की नवीन धारा साहित्य के क्षेत्र में बहने लगी। तेलुगु साहित्य में भी रहस्यवादी, छायावादी कविताएँ प्रवाहित हुई है। इसके साथ-साथ स्वतंत्रता के आन्दोलन के समय राष्ट्रीयता की लहर साहित्य में तरंगित हो उठी। इस काल में काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि का विकास हुआ तथा इस काल में रेडियों नाटक भी प्रसारित हो रहे हैं। आधुनिक काल के प्रमुख विद्वान् परवस्तु चिन्नयसूरि ने 'बाल व्याकरणमु' लिखकर तेलुगु भाषा का मार्ग प्रशस्त तथा सुव्यवस्थित किया था। यह ग्रन्थ विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों के लिये अनिवार्य पाठ्यग्रंथ में रखा गया है। इनकी 'नीतिचंद्रिका','पंचतंत्र' आदि रचनाएँ प्रचलित हैं। इस काल के प्रमुख कवि- चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम, गिडुगु राममूर्ति पंतुलु, गुरजाड अप्पाराव आदि कवि थे । इस प्रकार आधुनिक काल में तेलुगु साहित्य का विकास आरंभ हुआ ।

तेलुगु स्वरांत भाषा है । इसलिए मधूर और संगीत-गायन के लिए उपयुक्त मानी जाती है । स्वरांत मधूर भाषा होने कारण पाश्चात्य विद्वानों ने तेलुगु को "पूरब की इटालियन भाषा (इटालियन ऑफ दी ईस्ट) कहा है ।"[15] तेलुगु के अक्षर गोल रहने के कारण मोतियों से तुलना की जाती है ।

[15]तेलुगु साहित्य:संदर्भ और समिक्षा, एस.टी. नरसिंहचारि, पृ. 673

तेलुगु साहित्य क्षेत्र में 11 वीं शताब्दी के आरंभ से आज तक के हजार वर्ष में इतिहास पुराणादि से गाँवों की कहानियाँ, गाने आदि तक की हर प्रवृत्ति की हजारों कृतियों की सृष्टि हुई। आंध्रप्रदेश की साहित्य अकादमी तथा अन्य साहित्यिक संस्थाओं द्वारा इनकी श्री वृद्धि भी यथासाध्य हो रही है । आन्ध्रप्रदेश में संस्कृत और तेलुगु भाषा में समान उच्च कोटि की प्रतिभा रखनेवाले विद्वान् और कवि विराजमान हैं। इसका एक मात्र कारण इन दो भाषाओं का पारस्पारिक संबंध है । संस्कृत के प्रमुख ग्रंथ तेलुगु में अनुदित हुए हैं । इन अनुवादों में व्याकरण, न्याय, वेदान्त (दर्शन) आदि ग्रंथ हैं । उपर्युक्त साहित्यिक गतिविधियों के कारण तेलुगु भाषा और साहित्य का भविष्य उज्वल एवं विकासोन्मुख दिखाई देता है ।

तेलुगु साहित्य में आदिवासी चेतना अपना आकार ग्रहण करने लगी है । इस साहित्य में आदिवासी जीवन पर आधारित अनेक रचनाएँ जैसे नाटक, कहानी,उपन्यास, आदि विधाओं को लेखक ने पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है । 1872 में लार्ड मियो ने 'बंगाल गजिट' नामक सरकारी समाचार पत्र में एक विज्ञापन दिया था। इस विज्ञापन के अनुसार उस ग्रंथ को ईनाम मिलेगा जिसमें भारत देश वासियों के रहन-सहन, आचार-व्यवहारों का वर्णन किया गया हो। इसी समय आंध्रप्रदेश के कर्नूल जिले के डिप्टी कलक्टर नरहर गोपालकृष्णम्मा शेट्टी द्वारा लिखित उपन्यास 'श्री रंगराज चरित्र' ने ईनाम को जीत लिया था। 'मद्रास गजिट' नामक सरकारी समाचार पत्र ने इस रचना को तेलुगु के गद्य साहित्य का प्रथम उपन्यास घोषित किया था। इस उपन्यास का दूसरा नाम 'सोनाबायि परिणयमु' है क्योंकि इस उपन्यास में विद्यानगर के शासक रंगराज लंबाडी जाति की स्त्री सोनाबायि के साथ प्रेम विवाह कर लेता है । लेकिन उसको बाद में पता चलता है वह बुआ की बेटी है। इस तरह तेलुगु साहित्य में आदिवासियों का प्रस्ताव सामने आया है। इसके बाद दाशरथि रंगामाचार्युलू के द्वारा रचित 'चिल्लरदेवुल्लु' उपन्यास में आदिवासियों की जमीन समस्या को चित्रित किया गया था। जमीन की समस्या आदिवासी जीवन की बड़ी समस्या है ।

अट्टाडा अप्पलनायुडु द्वारा लिखित रचनाएँ- 'पोडु-पोरु'(1988), 'प्रत्यन्मायमु'(1995), 'पुनरवासमु' आदि रचनाएँ हैं। 'पुनरवासमु' उपन्यास में श्रीकाकुलम जिले के आदिवासी किसान अपने अस्तित्व और जमीन हक के लिए किये गये आन्दोलन में हज़ारों किसान अपने प्राण त्याग किये है। उनके प्राण के त्याग को ही रचनाकार ने उपन्यास का रूप दिया है। तेलंगाना प्रांत में जो आन्दोलन जमींदार और गरीब मजदूर किसानों के बीच हुआ, उसके संबंध में वट्टीकोट अन्वार स्वामी के द्वारा लिखित उपन्यास 'प्रजल मनिषि' तथा 'गंगु' उपन्यास में आदिवासियों के जीवन गाथा को वर्णित किया है। जिसमें जागीरदार, जमींदार आदिवासियों की जमीन को हड़प

लेना तथा उनको अपनी जमीन से बेदखल करना और उन पर किए गए अन्याय-अत्याचार को चित्रित किया है। इस तरह आदिवासियों के दुःख, दर्द को रचनाकार जमीन समस्या के नाम से इस उपन्यास में उनका यथार्थ चित्रण किया है। 'गंगु' उपन्यास असंपूर्ण रहने के कारण इस उपन्यास में आदिवासियों की समस्या जमीन समस्या ही बनकर रह गयी ।

आदिवसियों के आशा ज्योति कोमरम भीम 1920 से लेकर 1940 तक अपनी आखरी साँस तक आदिवासियों के लिए लड़ते हुए मात्र भूमि की गोद में सो गये । उस ऐतिहासिक आन्दोलन को लोगों तक लाने के लिए रचनाकार साहू और अल्लम राजय्या ने रचनाएँ की उन्होंने जोड़ेनघाट को केंद्र बनाकर स्वराज्य के लिए, जमीन के हक के लिए, निजाम सरकार से किये गये युद्ध का चित्रण अपनी रचनाओं में किया गया हैं । गोंड जाति की संस्कृति, राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियों को रचनाकार ने 'कोमरम भीम' उपन्यास में चित्रित किया था। इस उपन्यास के संदर्भ में कोमरम भीम कहता है कि "यह निर्णय कोई साधारण निर्णय नहीं है यह सांस्कृतिक अस्तित्व का निर्णय है । भूख एवं कठीन परिस्थितियों से गिडगिडा रहे लाखों लोगों का निर्णय है। हम हमारे अधिकार के लिए लड़ रहे हैं हम न्याय को छीनकर लेंगे, युध्द में एक व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर एक माँ अपने एक बेटे को खो देगी पिता अपने एक पुत्र को खो देगा लेकिन जो युध्द में खून बहायेगा वे आनेवाली पीढ़ियों को प्रेरणादायक बन जाएगा ।"[16]

केशवरेड्डी द्वारा रचित उपन्यास 'चिवरि गुडिसे' में यानादुलु के जीवन को चित्रित किया गया है । इसमें लेखक ने दिखाया है कि कौन-सी जाति में पैदा होने से बुध्दिमान होगा? क्या उच्च कुल में पैदा होने से पढ़ाई कर सकता है? इस तरह के प्रश्न उठते हैं ।

आदिवासियों का जीवन जंगल में किस तरह बीत रहा है, और उनकी संस्कृति तथा संप्रदाय को बाहर लाने का प्रयास रचनाकार 'सादन' ने किया है। इनकी रचनाएँ 'सरिहददु' और 'रागो' मुख्य है। मडिया भाषा में 'रागो' का अर्थ है 'रामचिलुका' और हिंदी में 'तोता' है। पिंजरे में बंद तोता पिंजरे से आज़ाद होने का इंतजार करता है। 'रागो' नायिका प्रधान उपन्यास है। वह अपने माता-पिता के बन्धनों से और इस समाज के बन्धनों से मुक्त होना चाहती है और शोषित नहीं होना चाहती है इसलिए वह नक्सलियों में शामिल होती है। रागो उपन्यास में स्त्री की स्वतंत्रता को समाज किस प्रकार छीन लेता है इसका चित्रण किया गया है ।

[16]कोमरम भीम, साहू-अल्लम रजय्या, पृ. 194

तेलुगु साहित्य में अब तक जो आदिवासी साहित्य आया है, वह पूरा साहित्य गैर आदिवासियों द्वारा लिखा गया है। आदिवासियों की पीड़ा जो भोगता है उसे ही दुःख-दर्द का पता चलता है। भले ही यह साहित्य गैर-आदिवासियों द्वारा लिखा जा रहा हो परन्तु उसकी संवेदनात्मक अभिव्यक्ति उच्च स्तर की प्रतीत होती है। अंततः कहना संगत होगा कि तेलुगु साहित्य में 'आदिवासी साहित्य' एक महत्वपूर्ण धारा के रूप में प्रस्थापित हो चुका है।

2. रणेंद्र और वी. चंद्रशेखर राव : व्यक्तित्व और कृतित्व

2.1 हिन्दी उपन्यासकार रणेंद्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व :

रणेंद्र का जन्म एक शिक्षित परिवार में 10 फरवरी सन 1960 ई. को हुआ। आपकी माता श्रीमती उर्मिला प्रसाद ने एम.ए.तक की पढ़ाई की। पिता डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद बिहार राज्य के नालन्दा जिले के सोहसराय नामक कस्बे में स्थित 'किसान कालेज' के हिंदी विभाग में थे। 1957 से 1972 तक वह हिंदी विभाग के विभागाध्यक्ष रहे। उन्होंने लगभग एक दर्जन उपन्यास लिखे हैं। 'सिद्धियों के खंडहर' से लेकर 'काश्मीर की बेटी' उनके प्रमुख उपन्यास हैं। कबीर के जीवन पर केन्द्रित उनका उपन्यास 'सुनो भाई साधो' अत्यंत चर्चित रहा है।

रणेंद्र बचपन से ही रचनात्मक, सृजनात्मक परिवेश में रहे। पिता लेखक और माताजी की एम.ए. तक की पढ़ाई का उनके ऊपर गहरा प्रभाव दिखाई देता है। पारिवारिक परिवेश ने उन्हें लेखन की ओर अग्रसर किया।

इनके मुहल्ले में अधिकांश श्रमजीवी रहते थे। बीड़ी मजदूर, ट्रक ड्राइवर, मछली-सब्जी बेचने वाले, दुकानों में काम करने वाले आदि। इन्हीं घरों में खेलते-कूदते, खाते-पीते रणेंद्र बड़े हुए। इन्हीं घरों में इनके बाल-सखा रहते थे। इन्हीं के साथ उन्होंने हाईस्कूल-कॉलेज तक की पढ़ाइ पूरी की।

रचनाकार के जीवन में परिवेश की क्या भूमिका होती है इस संबंध में रमेशचंद्र शाह लिखते हैं कि –"हर कथाकार का अपना एक संसार-एक निजी मानसिक परिवेश होता है जो कि उसके अतीत से ताल्लुक रखता है और चेतना-प्रवाह में जिसके जिवित स्पंदन की सुलभता, उसे कथा-रचना में प्रवृत करनेवाले कारणों में से एक हो सकती है। यह कहना की कोई रचनाकार संस्कार के स्तर पर एक खास निजी परिवेश में स्थापित है, एक प्रकार से देखा जाए तो यह

कहने के बराबर है कि उसकी संवेदना भी एक खास मायने में महत्वपूर्ण है ।"[17] यहाँ स्पष्ट है कि किसी भी रचनाकार का परिवेश उसके रचना-संसार को प्रभावित करता है। परिवेश से बनी उसकी मानसिकता और जीवन-दृष्टि उसकी रचनाओं की अंतर्वस्तु होती है। इसलिए किसी रचनाकार के व्यक्तित्व को समझने से पहले उसके परिवेश और जीवन-दृष्टि पर विचार करना आवश्यक हैं ।

साहित्य-सृजन की प्रेरणा :

रणेंद्र को साहित्य लिखने की प्रेरणा अपने पिताजी से मिली । रणेंद्र ने महाश्वेता देवी, अरुंधती रॉय, संजीव आदि रचनाकारों को अपना आदर्श माना है । इन रचनाकारों की रचनाओं से भी उनको साहित्य-सृजन करने में मदद मिली । इसके अलावा अनेक रचनाकारों की रचनाओं से भी प्रेरणा मिलती रही जैस कि डॉ.बी. विरोत्तम की पुस्तक 'झारखंड इतिहास एवं संस्कृति' तथा 'रांची जिला गजेटियर' से मुंडाओं के आगमन के पूर्व छोटा नागपुर में असुर सभ्यता को समझने में मदद मिली है ।

'नया ज्ञानोदय' में प्रकाशित होनेवाले भगवान सिंह के धारावाहिक आलेखों ने अंगिरस-अंगीरा-अगरिया-असुर के संबंधों को स्पष्ट किया । कुमार सुरेश सिंह के संपादन में प्रकाशित पुस्तक 'ट्राईबल मूवमेंट्स इन इंडिया' (Tribal Moment in India) तथा 'अन्यथा' के जुलाई 2006 के 'रेड इंडियन्स' पर केन्द्रित अंक एवं 'नेशनल ज्योग्राफिक सोसाइटी' की पुस्तक 'द वर्ल्ड आफ द अमेरिकन इंडिया' (The World of American Indian) ने इनकी रचनाओं को बृहतर आयाम दिए ।

राज्य प्रशासन सेवा में नियुक्ति होने के पश्चात रोहतास जिला के चेनारी अंचल में चेरो जनजाति की दुर्गावती जलाशय परियोजना के कारण विस्थापित होने की प्रक्रिया को नजदीक से देखने-समझने का अवसर मिला । रोहतास जिले की सामन्ती-सवर्णवादी मानसिकता, दलितों के प्रति अत्यंत तीव्र घृणा, उपेक्षा के परिवेश ने मध्यवर्गीय संस्कारों के केंचुल को उतारने में मदद पहुंचाई । रणेंद्र के लिए चेनारी का पदस्थापन जीवन का टर्निंग पाइंट साबित हुआ । यहाँ का अनुभव इनकी 'रात बाकी' कहानी में दिखाई देता है ।

रणेंद्र ने समय-समय पर भारत सरकार की कई परियोजनाओं पर कार्य करके अपनी सेवा भावना का परिचय दिया है। सन् 1988 में राज्य प्रशासनिक सेवा में नियुक्ति हुई और

[17] आलोचना, पृ .73

1992 से झारखंड में विभिन्न पदों पर रहे हैं तथा आज भी ये आदिवासी समाज के विकास के लिए कार्यरत हैं। अनेक आदिवासी समुदायों के बीच रहने, घुलने-मिलने, सुख-दुःख में भागीदारी होने एवं विशिष्ट संस्कृति पर पड़ रहे प्रभावों का जिज्ञासु विद्यार्थी की तरह अध्ययन करते रहे हैं।

वर्ष 1999-2004 तक भारत सरकार के 'खादी-ग्रामोध्योग आयोग' के झारखंड राज्य कार्यालय में प्रभारी पदाधिकारी रहे हैं। इस कार्यावधि में पूरे झारखंड में घूमने, समझने और इसकी विविधता के अध्ययन का इनको शुभअवसर मिला। इस पाँच साल की अवधि में 'झारखंड एन्सैक्लोपीडिया' के चार खंडों की नींव पड़ी। इन्होंने प्रसिद्ध समालोचक डॉ. खगेन्द्र ठाकुर के निर्देशन में मित्रों के साथ मिलकर एक साहित्यिक पत्रिका 'कांची' का सम्पादन किया है। इसके अलावा झारखंड का लोकप्रिय दैनिक समाचार-पत्र 'प्रभात खबर' के साप्ताहिक साहित्यिक पृष्ट का कार्यभार एक-डेढ़ वर्ष तक सम्भाला। कुछ अंतराल के बाद दैनिक समाचार-पत्र 'हिन्दुस्तान' के साप्ताहिक साहित्यिक पृष्ठ की भी जिम्मेदारी साल-डेढ़ साल तक निभाई। कविताएँ लगातार लिखते रहे हैं। रणेंद्र की कविताएँ 'वागर्थ', 'नया ज्ञानोदय', 'हंस' तथा 'कथादेश' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं।

कृतित्व :

कथाकार रणेंद्र का रचना संसार बहुत व्यापक है क्योंकि अपने उपन्यास, कहानी-संग्रह एवं कविता-संग्रह में इन्होंने पूरे ब्रम्हांड को देखने की कोशिश की है। लेखक ने आदिवासी समाज पर बढ़ रहे चौतरफा दबावों को रेखांकित किया है। उनकी रचनाओं को देखने से पता चलता है कि उनकी रूचि हाशिये के समाज की वास्तविक स्थिति को समाज के समक्ष उपस्थित करने में है।

रचनाएँ :

'रात बाकी एवं अन्य कहानियाँ' :

'रात बाकी एवं अन्य काहानियाँ' कहानी-संग्रह राजकमल प्रकाशन, पटना से सन 2010 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की कहानियाँ बिहार और झारखंड की पृष्ठभूमि पर लिखी गई हैं। जहाँ व्यवस्था यानी पुलिस, प्रशासन तथा राजनेताओं की क्रूरताएँ बहुत अधिक हैं और जहाँ किसी को नक्सलवादी बताकर मार देना तो किसी को दोषी बनाकर जेल में डाल देना जैसी अनेक घटनाएँ दिखाई देती हैं। इन घटनाओं के साथ-साथ स्त्रियों के शोषण के अनेक साक्ष्य इन

कहानियों में उपस्थित हैं । सरस्वती, पद्मजा, सोमा, पुष्पा, जैसी स्त्रियों की दुर्दशा देखकर तो प्रशासकीय तन्त्र से वितृष्णा होने लगती है और कैसे सामाजिक, राजनैतिक, प्रशासनिक व्यवस्था की चक्की के नीचे एक आम-आदमी पिसा जा रहा है इसका भी वर्णन मिलता है । उपर्युक्त सभी मुद्दों को रणेंद्र ने अपनी कहानियों में दिखाया है ।

इनकी कहानियों के सन्दर्भ में आलोचक राजीव 'राही' लिखते हैं कि "रणेंद्र की कहानियों से गुजरने के पश्चात् इनकी तीन विशेषताएं अनायास ही हमारा ध्यान खींचती हैं। शोध की गहन प्रवृत्ती, लोक-कथाओं में सृजनात्मक प्रयोग बोल-चाल की भाषा का रचनात्मक रूप है ।"[18] रणेंद्र की कहानियों की एक विशेषता यह है कि सामान्य जन पर कहानियाँ लिखने के बावजूद रणेंद्र ने इन कहानियों को जनवादी फार्मूले से दूर ही रखा है। हालांकि प्रतिरोध इन कहानियों में भी है। लेकिन सूक्ष्म रूप में 'ठीक बा नू सायरा बानू' कहानी को देखें तो पुराने प्रेमी, अब विधायक राजेश्वर से अपमानित होकर पद्मजा कुछ कर तो नहीं पाती लेकिन उसके हाव-भाव बता देते हैं कि उसके मन में राजेश्वर के प्रति कितनी घृणा है। 'चम्पा गाछ अजगर और तालियाँ' कहानी की सरस्वती के गाछ में बदलने और उस की टहनियों से हज़ार लाख धनुष बनने की कल्पना भी इसी सूक्ष्म विद्रोह को दर्शाती है ।

हमारे देश की लोकतांत्रिक सरकार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हित के लिए आदिवासियों का पूर्णत: सफाया कर देना चाहती है। दमन की बुलंदियाँ चढ़ती इस सरकार का महाशक्ति बनने का दिवास्वप्न पूरा हो न हो परन्तु इसे पूरा करने के लिए वह जल, जंगल, जमीन, और जान की कीमत पर भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की दलाली पूरी निष्ठा के साथ करती है ।

इस संग्रह में गैर-आदिवासी जीवन पर लिखी कहानियाँ भी हैं जिनमें 'रफीक भाई को समझाए' एक महत्वपूर्ण कहानी है परन्तु 'बारिश में भीगती गौरेया' और 'ठीक बा नू सायरा बानू' कहानियों से ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह भाव और शिल्प के स्तर पर अपने लक्ष्य से भटक गई हैं ।

थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ :

रणेंद्र ने कथाकार के रूप में जो साहित्य रचा उसके अतिरिक्त उनकी कुछ कविताएँ भी प्रकाशित हुई हैं जो 'थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ' काव्य संकलन के नाम से 2010 में शिल्पायन प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित हुआ है ।

[18] हंस, पृ. 87

रणेंद्र ने इन कविताओं में आदिवासियों के दुःखमय जीवन को वाणी दी है । आदिवासी जनजीवन की सांस्कृतिक भूमि को मुख्यधारा के लोगों द्वारा प्रताड़ित करने की साजिश की ओर भी इशारा किया है । 'अवसान बेला पर' कविता में कवि ने आदिवासी जनजीवन के ह्रास का चित्र उकेरा है । कवि कहता है –

"दम-दम दमकता है

मुख्यधारा का चमकीला चेहरा, जिसकी

सूर्य की आभा झोल नहीं पा रही

विकलांग हो रही

हमारी पीढ़ी"[19]

आज चकाचौंध की दुनिया में आदिवासी जनजीवन की सांझी संस्कृति को जो खतरा उत्पन्न हो रहा है उसकी ओर कवि इशारा कर रहा है । कवि रणेंद्र की रागात्मक सहानुभूति उन तमाम मजदूरों के प्रति भी है जिनके दुखमय जीवन को कवि वाणी दे रहा है ।

"सबको खतरा था

बूधन बिरजिया

उसकी फटी हुई गमछी

और उठी हुई ऊँगली से"[20]

कुमार मुखुल ने लिखा है कि "रणेंद्र की इन कविताओं में वह जीवन आया है जिसकी हम सिर्फ़ बात करते अघाते नहीं हैं,कविगण और बात-बेबात जिसकी चर्चा करते थकते नहीं आलोचक गण। इसमें आदिवासियों का जामुनी रंग बड़ी ढीठाई से बाँधता है दीठ को और सांवरी का सौन्दर्य उद्वेलित करता है काली रात से कलंक को भी दिठौना-सा धारने को । ये कविताएँ 'सलवा जुडुम' के दानवी नायकों की क्रूरता के प्रति आगाह करती हैं कि इन नव 'इदी अमीनों' के फ्रिजरों का 'एक कोना भी नहीं भरा है ताजे नरगोश्त से'। 'थोड़ा-सा स्त्री होना

[19] थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ, पृ.10

[20] वही, पृ.12

चाहता हूँ' शीर्षक है संग्रह का और यह थोड़ा सा स्त्री होना ही पूरा मनुष्य होना है और ये कविताएँ पाठकों को इस मनुष्य होने की ओर ले जाने की कोशिश करती हैं।"[21]

अंत में कवि की अभिलाषा है कि –

"लेकिन इसी जनम में अपनी

सहज संगती की चाह

पूरी हो कामना अनन्तिम इसलिए

थोड़ा स्त्री होना चाहता हूँ।"[22]

झारखंड एन्साइक्लोपीडिया:

'झारखंड एन्साइक्लोपीडिया' वाणी प्रकाशन दिल्ली से 2008 में प्रकाशित हुआ है। इस 'एन्साइक्लोपीडिया' के चार खंड हैं रणेंद्र एवं उनके सहयोगी सुधीर पाल ने इन चार खंडों का सम्पादन किया है।

'झारखंड एन्साइक्लोपीडिया' आदिवासियों की गाथा है रणेंद्र ने आदिवासियों की संस्कृति, प्रकृति, जंगल, पहाड़ इन पर हो रहे अन्याय-अत्याचार तथा शोषण का चित्रण इस 'झारखंड एन्साइक्लोपीडिया' में किया है।

'झारखंड एन्साइक्लोपीडिया' खंड-1 में छोटा नागपुर का इतिहास, संथाल परगना का इतिहास, सरायकेला-खारसांवा का इतिहास, सदानों का इतिहास, 1857 और झारखंड, भारत छोड़ो आदोलन में झारखंड, 'हो' परम्परा, आदि दिखाया गया है।

'झारखंड एन्साइक्लोपीडिया' खंड-2 में बिर और बुरु यानी जंगल और पहाड़ हैं। झारखंड जन-समुदाय और संस्कृति इन्हीं जंगलों, पहाड़ों में पलती-बढ़ती आज इस मुकाम तक आ पहुंची है। ये जंगल और पहाड़ इनके आराध्य भी हैं और पालनहार भी। जंगल और पहाड़ों के साथ-साथ झारखंड के समस्त भौगोलिक विकास, परिस्थिति-परिवेश की चर्चा अपने विषय के विभिन्न विद्वान-विशेषज्ञों ने इस खंड में की है यथा-झारखंड की भौगोलिक संरचना, भू-आकृति, नदियाँ और प्रकृति, वनसंपदा, भूजल और भू-विज्ञान, कोयला और खनिज, कृषि एवं

[21] वही, पृ.10

[22] थोडा सा स्त्री होना चाहता हूँ, पृ. 94

सिंचाई, उर्जा, परिवहन पथ के साथ-साथ हाट बाज़ार और पर्यटन केंद्र आदि मुद्दों की चर्चा हुई है।

झारखंड की अपनी विशिष्ट जनसंस्कृति ही है जो प्रकृति पर विजय नहीं बल्कि उसकी पूजा, उसके साथ सामंजस्य स्थापित करती, सामुदायिकता-सामूहिकता पर आधारित, श्रमरस में रची-बसी, उत्सवधर्मी संस्कृति है। जन या लोक अपने आनन्द में प्रफुल्लित रहते हैं। व्यक्ति समूह बनकर ही आनन्द का आस्वादन करता है। प्रकृति और व्यक्ति-चेतना का एकात्म-अन्तस्त्राव लोक-कलाओं में रसानुभूति का संचार करता है।

ग्लोबल गाँव के देवता :

'ग्लोबल गाँव के देवता' रचनाकार रणेंद्र का उपन्यास है, जो 2009 में भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। 'ग्लोबल गाँव के देवता' असुर समुदाय के अनवरत जीवन संघर्ष का दस्तावेज है। रणेंद्र इस उपन्यास के माध्यम से यह दिखाना चाहते है कि आदिम जन-जातियाँ वनों पर आश्रित रही हैं। आदिकाल से लेकर आज तक वे वन्य जीवन जीती रही हैं किन्तु अपने देवता कहने वाले नगर-वासियों ने उनका लगातार दोहन शोषण और उत्पीड़न किया है। सभ्यता और विकास के नाम पर प्रकृति को रौंदा है, साथ ही प्राकृतिक जीवन जीने वाले निरीह प्रकृत मानव-समुदायों के जीवन के साथ हिंसक, बर्बर, अशिष्ट और अश्लील छेड़छाड़ की है। उनके आस्था के साथ खिलवाड़ किया है, उनकी परंपराओं को तोड़ा है, उनके जीवन-साधनों और संसाधनों को तहस-नहस किया है और उन्हें शरणार्थियों की स्थिति में ला पटका है।

'ग्लोबल गाँव के देवता' का सूत्रधार एक ऐसा व्यक्ति है जिसे बेरोजगारी और अपमान की गाढ़ी काली रात के बाद बर्वे जिला कोयल बीघा प्रखंड के भौंरापाट नामक जगह के एक आदिवासी स्कूल में मास्टरी का प्रस्ताव मिलता है। अपने घर से तीन सौ किलोमीटर दूर पहाड़ के ऊपर जंगल के बीच स्थित इस जनजातीय स्कूल की कल्पनामात्र से ही उसका दिल बैठ जाता है। सूत्रधार का वहीं का हो जाना उपन्यास की पूरी कथा यात्रा को एक खास तरह की आत्मीयता और स्वानुभूत पीड़ा की टीस से भर देता है।

इस उपन्यास में ग्लोबल गाँव का बड़ा देवता है वेदांग, यह विदेशी कम्पनी है पर नाम इसका रखा गया है 'वेदांग'। दूसरा देवता है- टाटा, जिसने असुर के लोहा गलाने और औजार बनाने के हुनर का अंत कर दिया है। इसलिए असुर मानते हैं कि टाटा कम्पनी ने उसका जो

विनाश किया है वह असुर जाति के इतिहास की सबसे बड़ी हार है। "लेकिन बीसवीं सदी की हार हमारी असुर जाति की अपने पुरे इतिहास में सबसे बड़ी हार थी। इस बार कथा-कहानी वालों सिंगबोंगा ने नहीं, टाटा जैसी कम्पनियों ने हमारा नाश किया। उनकी फैक्टरियों में बना लोहा, कुदाल, खुरपी, गैंता, खंती सुदूर हाटों तक पहुंच गये। हमारे गलाये लोहे के औजारों की पूछ खत्म हो गयी। लोहा गलाने का हजारों-हजार साल का हमारा हुनर धीरे-धीरे खत्म हो गया।"[23]

यह कहा जा सकता है कि अपने हित के लिए ये देशी-विदेशी कम्पनियाँ इस कदर मशगूल है कि असुर जाति को अपराध और भ्रष्टाचार के लिए भी जगह देने में कोई संकोच नहीं है। राजनीतिज्ञों, अफसरशाहों और बाहुबलियों के पुराने त्रिकोण को बाबा वेशधारी धर्म के व्यापारियों ने चौखट विस्तार दे दिया है । धन की सत्ता के पीछे जब इतना बड़ा तन्त्र खड़ा हो तो भला साधनविहीन क्रान्ति कब तक छाती ठोक कर खड़ी रहेगी।

अंततः कहा जा सकता है कि 21 वीं सदी के युवा रचनाकार रणेन्द्र का रचना-संसार हमारे सामने एक विशेष समाज का सामाजिक दस्तावेज प्रस्तुत करता है। लेखक आदिवासियों की अनन्त संघर्ष गाथाओं के प्रति आस्थावान हैं। आदिवासियों की समकालीन संघर्षगाथा प्रस्तुत करना ही उनके साहित्य का प्रमुख लक्ष्य है। इस प्रकार एक संपूर्ण आदिवासी इतिहास दृष्टी इनके साहित्य के भीतर झलकती है ।

2.2 तेलुगु उपन्यासकार वी. चन्द्रशेखर राव का व्यक्तित्व एवं कृतित्व :

बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों से तेलुगु साहित्य को सुसम्पन्न करने वाले आंध्रप्रदेश के रचनाकारों में चन्द्रशेखर राव महत्त्वपूर्ण रचनाकार है। इनका जन्म अप्रैल 19, 1959 में आंध्रप्रदेश के प्रकाशम जिला, ओंगोल में हुआ था। उनका बचपन गुंटूर ज़िले में बिता और यहीं से शिक्षा प्राप्त की। इनको बचपन से ही कविताएँ लिखने का शौक था। एम.बी.बी.एस की पढ़ाई छोड़कर लोक सेवा आयोग की तैयारी कर उसमें उत्तीर्ण होकर ऐ.ए.एस के पद पर नियुक्त हुए । फिलहाल फैनान्सियल एड्वैसर ऑफ चीफ एकाउंट आफिसर के पद पर नियुक्त हैं ।

चन्द्रशेखर राव को साहित्यिक प्रेरणा रविशास्त्री, सुब्रमण्यस्वामी, नंडूरी राममोहन राव और श्रीश्री आदि साहित्यकारों से प्राप्त हुई। आपका परिवेश कम्युनिस्ट पृष्ठभूमि से जुडा हुआ था। इनके पिता संयुक्त कम्युनिस्ट पार्टी के कार्ड होल्डर और ऐ.एफ.टी.ए में सक्रिय सदस्य थे ।

[23] ग्लोबल गाँव के देवता, पृ. 83

पिता के विचारों का प्रभाव इन पर स्पष्टत: दिखाई देता है । कम्युनिस्ट पृष्ठभूमि से आने वाले चन्द्रशेखर राव वामपक्ष आन्दोलन में भी भाग लेते रहे और राडिकल छात्र आन्दोलन से भी आपके संबंध रहे हैं । इसी के चलते दलित और आदिवासी इलाके, समाज व उनकी समस्याओं से भी जुडते गए ।

चन्द्रशेखर राव गुंटूर के महान रचनाकार सी.वी.यन.धन की प्रेरणा से पुस्तके पढ़ने लगे। रुसी साहित्य इनके अध्ययन का विषय रहा। इन सबके प्रभाव से दलित और आदिवासियों के जीवन पर आधारित रचनाएँ करनी शुरू की। चन्द्रशेखर राव का रचना काल 1980 में प्रारंभ हुआ था। अपनी रचनाओं के माद्यम से दलित तथा आदिवासी समाज की समस्याओं को मुख्य धारा के समाज के सामने रखा। अपनी रचनाओं में रचनाओं में दु:ख, आक्रोश, भय तथा क्रोध भाव रूपी शब्दों को वर्णित किया है। चन्द्राशेखर राव की पहली कहानी 'जीवनी' 1994 में प्रकाशित हुई। 'लेनिन प्लेस', 'मायालान्तर',और 'द्रोहवृक्षम' प्रमुख कहानी संग्रह है। 'चिट्ट चिवरी' प्रमुख रेडियो नाटक 2014 में लिखा गया है।

चन्द्रशेखर राव के तीन प्रमुख उपन्यास हैं- इनमें 'ऐदु हंसलु' 1999 में प्रकाशित हुआ । इस उपन्यास ने 'आटा उपन्यास प्रतियोगिता' (आटा नवलल पोटिलो) में जीत हासिल की। दूसरा उपन्यास 'आकुपच्चनि देशम्' 2012 में प्रकाशित हुआ है तीसरा उपन्यास 'नल्लमिरियम चेट्टटु' 'नव्या उपन्यास प्रतियोगिता' (नव्या नवलल पोटिलो) में विजेता रहा। इस उपन्यास में दलित चेतना विशेष रूप से दिखाई देती हैं ।

चंद्रशेखर राव की कुछ कहानियों का अंग्रेजी,हिंदी, तमिल, कन्नड भाषाओं में अनुवाद हुआ है। 'नल्लमिरियम चेट्टु' का अनुवाद कन्नड़ भाषा में 'कारिमिनासिनागिडा'के नाम से हुआ है ।

पुरस्कार एवं सम्मान :

चन्द्रशेखर को तेलुगु भाषा साहित्य में अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है जिनमें प्रमुख रूप से यह हैं -

1. नुतलपाटी गंगाधरम पुरस्कार

2. जेष्टा पुरस्कार

3. कथा न्युदिल्ली पुरस्कार

4. इस्माइल पुरस्कारम पुरस्कार

5. तेलुगु युनिवर्सिटी कीर्ति पुरस्कार

6. यागल्ला फाउंडेशन पुरस्कार

7. कोड़ेपुड़ी श्रीनिवासा राव पुरस्कार

8 .पेददीबोट्ला स्पूर्ति पुरस्कार

कृतित्व :

21 वीं शताब्दी के प्रथम दशक के सर्वश्रेष्ट दलित और आदिवासी लेखकों में चन्द्रशेखर राव का नाम गिना जाता है। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा दलित और आदिवासी समस्याओं को उदघाटित किया है तथा दलित और आदिवासी समाज में चेतना लाने की कोशिश की है।

रचनाकार का रचनाधर्म उनके जीवन, जगत' उनके अनुभव एवं आंतरिक आत्मचिन्तन पर निर्भर रहता है। जब वह अपनी आंतरिक आत्मा की चेतना का बाह्य लोक से सामंजस्य अथवा तालमेल नहीं बिठा पाते तब उनका लेखक रूप छटपटाने लगता है। अतः वे अपनी आत्मा की आवाज को शब्द रूप देने लगते हैं। लेखक की विचारधारा विश्व की अनेक विचारधाराओं, दर्शनों तथा आन्दोलन से प्रभावित होती है। मार्क्सवाद का प्रभाव उन पर अधिक दिखाई देता है। उनकी रचनाओं में दलित और आदिवासी समाज अपने सम्पूर्ण रूप में वास्तविक रूप ग्रहण करता है। यहाँ तक कि स्त्रियों से लेकर बालकों की भी भावनाओं, इच्छाओं, आकांक्षाओं का चित्रण मार्मिक रूप से उन्होंने किया है। के.शिवारेड्डी, उपन्यासकार चन्द्राशेखर राव के सन्दर्भ में कहते है कि "तीन-चार दशकों के आंध्रप्रदेश के सामाजिक इतिहास को चंद्रशेखर राव के साहित्य के इतिहास से पुन: प्रारंभ कर सकते हैं, इतिहास जिसका वर्णन करना भूल जाता है, साहित्य उसकी पूर्ति करता है और पूरे सामाजिक परिणामों को हमारे अनुभव में लाता है।"[24] के. शिवारेड्डी ने चन्द्रशेखर राव को सामाजिक इतिहास की कोटी में लाकर खड़ा किया है।

'मायालान्तर'(2003) :

'मायालान्तर' कहानी संग्रह नवोदया प्रकाशन हैदराबाद से सन 2003 में प्रकाशित हुआ है। 1980 में तेलुगु राजनीतिक साहित्य में मूलरूप से परिवर्तन आया हैं। विशेष रूप से

[24] नल्लमिरियम चेट्टु, वी.चन्द्राशेकर राव, पृ.10

कम्युनिस्ट आन्दोलन की सीमाएं बहिर्गत हुई हैं। कुछ सामाजिक समूह प्रत्येक समस्याओं को लेकर प्रतिफलित होने से कम्युनिष्ट पार्टी असफल होने लगी थी। इस विफलता को पहचानकर दलित और स्त्री आन्दोलन सामने आये लेकिन कुछ दिनों तक ये आन्दोलन आंतरिक वैराग्य चलने पर भी बलपूर्वक अपना कार्य करते रहे। कुछ दिनों बाद दलित तथा स्त्रीवादी आन्दोलन एन.जी.ओ के हस्तगत हो गये। ये आन्दोलन केवल पत्रिकाओं में दिखावे के लिए समाचार के रूप में छपने लगे थे। इनके लक्ष्य धीरे-धीरे दूर होते गये। प्रारंभ में इन आन्दोलनों को गैर सरकारी संस्थाओं से अतिरिक्त बल मिलने लगा ।

वैश्वीकरण की पृष्ठभूमि में एन.जी.ओ संस्था की शक्ति और ज्यादा बढ़ने से आन्दोलनों का बल घटनेलगा था। आज के समय में दलित और स्त्री आन्दोलन को कम्युनिस्ट आन्दोलन पहचानने पर भी वह केवल पत्रिकाओं तक ही सीमित हो कर रह गए। इस समय में भी कुछ कम्युनिस्ट लोग एन.जी.ओ संस्था के हस्तगत होना दुःख का विषय मानते हैं। इन सभी समस्याओं को चन्द्रशेकर राव ने मायालांतर में चित्रित किया है ।

'नल्लमिरियम चेट्टु' (2012):

'नल्लमिरियम चेट्टु' उपन्यास नवोदया प्रकाशन हैदराबाद से 2012 में प्रकाशित हुआ है । इसने 'नव्या उपन्यास प्रतियोगिता' में जीत हासिल की है ।

'नल्लमिरियम चेट्टु' उपन्यास महान आत्म गीत तथा परिवेदन पत्र के रूप में लिखा गया है । दलित वर्ग के आदिम संस्कृति से जुडा हुआ है । द्वंद संघर्ष 'मादिगा (चमार) 'डंडोरा' पृष्ठभूमि से जोर देते समय राजनैतिक पारस्परिक घर्षणाओं के समय दुःख दर्द को लेकर खड़ा होने वाला हैं। प्रकाशम जिले के भौतिक, प्राकृतिक स्वरूप, श्रामिक, दलित वर्ग की चेतना, आन्दोलन के आत्म प्रतिफल का संगीत है। यह उपन्यास एक प्रकार से देखा जाय तो उपन्यास लेखक की अपनी मातृभूमि, अपने प्रान्त, अपनी जमीन, अपने लोगों का इतिहास है ।

'नल्लमिरियम चेट्टु' उपन्यास का केंद्र राजासुन्दरम का दलित परिवार है। दलित महिला आदेम्मा का लड़का राजय्या (राजासुन्दरम) पैसे के लालच में परिवार का ही सर्वनाश कर देता है। 'आकुपच्चनि देशम' उपन्यास का अलल सुन्दरम और राजा सुन्दरम दोनों समान हैं। दोनों ही द्रोही पात्र जाति द्रोही, आत्म द्रोही, वर्ग द्रोही हैं । दोनों ही अपनी स्वार्थ सिद्दी के लिए कितना भी नीचे गिरने से पीछे नहीं हटते ।

'नल्लमिरियम चेट्टु' उपन्यास में राजा सुन्दरम एम.एल.ए पद के लिए किस तरह जाति द्रोही बन जाता है, उपन्यास में इसको दिखाने की कोशिश की गई है। राजय्या एक दलित अध्यापक है । कदम-कदम पर उनको जाति के नाम पर बेइज्जत किया जाता है उनका सम्मान नहीं किया जाता। उसको दूर रखा जाता है। अपमान की आग में जलते हुए वह अपना रास्ता ही बदल लेता है। अपना नाम राजय्या से राजा सुन्दरम रखकर राजनीति में प्रवेश करता है, राजनीति में आकर वह इस मद्दी दोगली व्यवस्था का हिस्सा बन जाता है। उसका लड़का रुमी इसके विपरीत निकलता है। वह विद्रोह और विरोध का दूसरा रूप ले लेता है। उपन्यास पूरा रूमी की बहन कमली के द्वारा ही आगे चलता है। इस उपन्यास में स्त्री पात्र आदेम्मा, कान्तम्मा, विजया, कमली सभी दलित आन्दोलन में भाग लेती हैं ।

रूमी 'दंडोरा' (ढिंढोरा) आन्दोलन' का कार्यकर्ता है । 'दंडोरा आन्दोलन' को राजा सुन्दरम बार-बार रोकने की कोशिश करता रहता है । पर उसका लड़का ही उसका विरोध करते हुए कहता है कि "सर अभी ये ड्रामा रुकवा दीजिये। 'दंडोरा आन्दोलन' को और एक बार मत रोकिये । इतने सालों के बाद एक आन्दोलन हो रहा हैं, एक आशा, एक आत्मविश्वास है। इसे ध्वंस मत करो दंडोरा को राजकीय सीडी मत बनाओ दंडोरा हमारी पहचान है । इससे हम गुलामी को अस्वीकार करना सीखा है। फिर एक बार धोखा मत दीजिये तुम्हे क्या चाहिए? पद,पैसा या हमारी जान चाहिए ? इस तरह कहते हुए वह अपने शरीर पर पेट्रोल डालकर आग लगा लेता है।"[25] इसी को लेकर रूमी की बहन कमली दुःख व आक्रोश से कहती है कि "नीले रंग की आग, मनुष्य के रंग की आग, दुःख की आग, जाति के रंग की आग, मेरी काली मिर्च का पेड़ जल जा रहा है। मृत्यु की आग में रूमी, ये क्या अंत! आशाएं पूरी जल गई हैं । सारा मृत्यु घोष कर दिया फिर से पुनरावृत्त ना हो सके।"[26] इस तरह लेखक ने उपन्यास का अंत कर दिया है।

'आकुपच्चनि देशम्'(2012):

'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास नवोदया प्रकाशन हैदराबाद से 2012 में प्रकाशित हुआ है। वी.चंद्रशेखर राव ने इस उपन्यास में चेंचु (शबर) आदिवासियों की जीवन गाथा को और जीवन की यथार्थ परिस्थितियों को चित्रित किया है । उपन्यास में एक तरफ चेंचु आदिवासियों पर होने वाले सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक शोषण और अत्याचार को स्पष्ट करते हैं तो दूसरी ओर

[25] नल्लमिरियम चेट्टु, वी.चन्द्राशेकर राव, पृ.243

[26] नल्लमिरियम चेट्टु, पृ.244

चेंचु आदिवासिओं के जीवन और उनकी दयनीय स्थिति का अद्‌भुत चित्रण भी इस उपन्यास में दिखाई देता है ।

उपन्यास का नायक वीरा(वीरनरसिंहम) है। उपन्यास का आरंभ उस्मानिया विश्वविद्यालय में प्रवेश करने वाले चेंचु आदिवासी व्यक्ति वीरा से होता है। कठिन परिस्थितियों के कारण वीरा की माँ वीरा को जंगल के बाहर सड़क पर छोड़ देती है। वीरा अनाथश्राम में रहकर पढ़-लिख कर फिर उस्मानिया विश्वविद्यालय तक पहुंच कर शोधार्थी के रूप में मोहिनी से उसका परिचय होता है । बाद में विवाह भी कर लेता है ।

मोहिनी समाजशात्र में एम.फिल की छात्रा है । पाँच साल तक एम.एल पार्टी (मार्क्सिस्ट लेनिन) में सचिव थी और 'स्त्री शक्ति' नाम से एन.जी.ओ (स्वयं सेवी संस्था) चलाती हैं। इस संस्था का उद्देश्य घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओं की सहायता करना, आदिवासियों के अधिकारों के लिए लड़ना, स्त्री कर्मचारी सुरक्षा, विस्थापन की समस्याएँ के प्रति लोगों को सचेत करना आदि ।

वीरा की माँ एक समय फली फूली खुश रहती थी। अब वह अपना सब कुछ खो कर बंजर भूमि की तरह उदास रहने लगी थी। पेदा(बड़ा) मंतय्या गीतों के माध्यम से चेंचु जाति के जीवन को उदघाटित करता रहता है। अपने गीतों के माद्यम से चेंचु समाज का इतिहास लोगों के आगे रखता रहता है। सत्तालोलुप हाथों में आदिवासी जीवन व समाज जिस प्रकार अपना सब कुछ खोता जा रहा है उसी तरह पेदा मंतय्या भी अपना जीवन पुलिस स्टेशन में खोकर मास पिंड का रूप ले लेता है ।

वेलिगोंडा बाँध परियोजना के कारण चेंचु गूडेम में बाढ़ आने की सम्भावना से इनको पुनर्वास के लिए एन.जी.ओ की ओर से मोहिनी मार्कापुरम के निकट चेंचु आदिवासियों को वहाँ भेजने का संकल्प कर लेती है इसके लिए वह जमीन के कागज़ देकर वीरा को वहाँ जाने के लिए कहती है। चेंचु गूडेम (गाँव) पहुंचने के बाद वहाँ की दयनीय परिस्थितियों को देखकर वह उन्हीं में एक होकर रह जाता है ।

पुनर्वास के नाम पर वन पुत्रों को अपनी जमीन से दूर करनेका बड़ा षडयंत्र करनेवाला अलल सुन्दरम जैसे राजनेता, आन्दोलन, लड़ाइयों के बाद मैं भी थोड़ा सुख-मय जीवन बिताने की अधिकारी हूँ, कहकर सोचने वाली, एन.जी.ओ संस्था की मोहिनी, वीरा उन लोगों की दयनीय

परिस्थिति का सामना किस तरह से करता है, लेखक ने इस उपन्यास में दिखाने का प्रयत्न किया है। बहुत ही मार्मिक चित्रण किया है।

'ऐदु हंसलु'

'ऐदु हंसलु' उपन्यास 1999 में प्रकाशित हुआ है। 'आटा उपन्यास प्रतियोगिता' (आटा नवलल पोटी) में इसे पुरस्कार प्राप्त हुआ था। 1970-2000 तक के तेलुगु क्षेत्र में उत्पन्न हुई राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों और श्रीकाकुलम, गोदावरीघाटी, करीमनगर तकचलने वाला नक्सलवादी आन्दोलन फिर जल-जंगल-जमीन से जुड़े हुए इस आन्दोलन में छात्रों की भूमिका का चित्रण किया गया है।

जन जीवन में हो रहे परिवर्तन, संघर्ष के द्वारा पूरे वर्ग के लोगों में आने वाले नवीन परिवर्तन, 1970 से 2000 तक के समय के बौद्धिक वर्ग पर, रचनाकारों पर, शिक्षा के क्षेत्र में छात्रों पर सामाजिक आन्दोलन का प्रभाव रहा है। इसको लेखक ने इस उपन्यास में चित्रित किया है। इन समस्याओं को लेखक ने पाँच हंसों के द्वारा प्रतीकात्मक रूप में चित्रित किया गया है। इन पाचों स्त्री पात्रों का संबंध छात्र आन्दोलन से रहा। इन पाँचों हंसों के पीछे 1970-2000 का इतिहास छिपा हुआ है। आक्रोश, युद्धनिर्माण आदि के द्वारा पांचों स्त्रियों का जीवन उपन्यास में आगे बढ़ता है।

अंततः कहा जा सकता है कि वी. चन्द्रशेखर राव तेलुगु साहित्य के महत्वपूर्ण रचनाकार है। इनके साहित्य में समाज के उस तबके का यथार्थ चित्रण हुआ है जो समाज ने सदैव उपेक्षित रखा है। इन लोगों के जीवन की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक आदि स्थितियों को लेखक ने सजीव रूप से अपनी रचनाओं में चित्रित किया है। उनका रचना संसार तेलुगु साहित्य में अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि उनकी रचनाएँ हमे समकालीन समाज के उपेक्षित वर्ग की आत्मवाणी सी लगती है।

निष्कर्ष

अंततः कहना संगत होगा कि हिन्दी तथा तेलुगु साहित्य में आदिवासी साहित्य का महत्व नगण्य है। हिन्दी तथा अन्य भाषा में आदिवासी साहित्य की एक अविरल परंपरा के साक्ष्य इस अध्ययन के अंतर्गत मिले हैं जिसे उपर्युक्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। किसी भी कृति के अध्ययन से पहले उस कृति के रचनाकार तथा उसकी जीवन दृष्टि को जानना आवश्यक होता है। यहाँ पर हिंदी उपन्यासकार रणेन्द्र एंव तेलुगु उपन्यासकार वी. चन्द्रशेखर राव इनके व्यक्तित्व

और जीवन दृष्टि संबंधित बातों को उनकी रचनाओं के विश्लेषण द्वारा रेखांकित करने का प्रयत्न किया गया है क्योंकि लेखक की जीवन दृष्टि ही उसकी रचना में चित्रित होती है ।

द्वितीय अध्याय

'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' की कथावस्तु

1. 'गायब होता देश' की कथावस्तु

झारखंड के मुंडा आदिवासियों को केंद्र में रख कर लिखा गया उपन्यास 'गायब होता देश' झारखंड के संपूर्ण आदिवासी समाज के संकट, शोषण, लूट, पीड़ा और प्रवंचना के इतिवृत्त पर आधारित है। पूंजीवादी विकास की दौड़ में लोग मानव समुदायों का हनन करते जा रहे हैं, 'गायब होता देश' इसी की मार्मिक कहानी है ।

इक्यावन अध्यायों में विभाजित यह उपन्यास सामयिक और यथार्थपरक है । इसमें आदिवासी जीवन और संस्कृति की प्रकृति निकटता, सहजता, उन्मुक्तता का सहज चित्रण उपस्थित है जिसमें उनकी मान्यताएँ, विश्वास और रीति-रिवाजों की रचनात्मक पहचान की गई है। इस उपन्यास में जंगल का हरापन है तो उजडती बस्तियों का सन्नाटा भी है। यह उपन्यास काल्पनिक है फिर भी लेखक ने अपने आस-पास की घटनाओं को ही कथानक का आधार बनाया है ।

उपन्यास का मुख्य पात्र किशन विद्रोही है जो एक पत्रकार है। किशन विद्रोही की एक निजी डायरी है, जिसमें उसके जीवनानुभव हैं, साथ-ही-साथ उसके इलाके का विवरण भी है। जैसे किसी की भी डायरी में उसके जीवन से जुड़े दूसरे प्रसंग आते हैं वैसे ही किशन विद्रोही की डायरी में भी आदिवासी समाज आया है। किशन विद्रोही सवर्ण जाति का है। एक सुविधासंपन्न परिवार में रहते हुए भी उसका ध्यान हमेशा गरीबों और उनकी समस्याओं की ओर ही रहा है । इसलिए उसने पत्रकारिता को अपने करियर के रूप में चुना है और उनका पूरा ध्यान इन्हीं आदिवासियों की समस्याओं पर केन्द्रित रहा है। उन्होंने अपने अधिकांश लेखों में इन

आदिवासियों की समस्याओं को ही ज्यादा व्यक्त किया है। सामन्तवादी, उच्चश्रेणी तथा पूंजीपति वर्ग के लोग गरीब आदिवासियों का सदियों से शोषण करते आ रहे थे, जबकि किशन विद्रोही की कार्य शैली उच्च वर्ग के लोगों को रास नहीं आती है। उन्होंने उसे कई बार समझाने और डराने तथा धमकाने की भी कोशिश की जाती है । इसी क्रम में उस पर अखबार के प्रबंधन का दबाव बनता है कि वह ऐसी खबरों को ज्यादा तवज्जो नहीं दें। उसे स्वयंको बदलने का उपदेश मिलता है कि "देखो! केके बदलो यार। समय के साथ कदम से कदम मिला कर चलना ही बुध्दिमानी है । प्रोफेशनल लाइफ में अड़ियलपन से काम नहीं चलता। आगे दूर तक देखिए।"[1] पर किशन विद्रोही ने अपने कदम पीछे नहीं खींचे। आदिवासियों के अस्तित्व तथा हक की लड़ाई लड़ने में उसने अपनी जान गंवा दी ।

'गायब होता देश' उपन्यास रणेंद्र द्वारा लिखा गया है । इस उपन्यास का आरम्भ 'सोना लेकन दिसुम' (सोने जैसा देश) नामक एक गाँव से होता है जो सोने के समान है परन्तु धीरे-धीरे गायब होता जा रहा है । इसे नष्ट करने वाला राष्ट्र ही है । ऐसा राष्ट्र-राज्य जिसने वैश्विक पूंजी से हाथ मिला लिया है । इस उपन्यास में गाँव को इस तरह दिखाया है- "सोने के कणों से जगमगाती स्वर्णकिरण-स्वर्णरेखा, हीरों की कौंध से चौंधियाती शंख नदी, सफेद हाथी श्यामचन्द्र और सबसे बढ़ कर हरे सोने, शाल-सखुआ के वन । यही था मुंडाओं का सोना लेकन दिसुम।"[2] सोना लेकन दिसुम के गायब होने का एक साक्षी पत्रकार किशन विद्रोही है जिसकी हत्या हो जाती है; एक ऐसी हत्या जिसकी लाश तक नहीं मिलती । इस गुत्थी को सुलझाना शेष है जो उपन्यास के अंत तक सुलझ नहीं पाती है ।

पत्रकार किशन विद्रोही की हत्या कर दी जाती है लेकिन "न तो कोई चैनल न कोई अखबार पूरी गारंटी के साथ यह कहने को तैयार था कि हत्या ही हुई है। लाश मिली नहीं थी।

---

[1] गायब होता देश, पृ. 119

[2] वही, पृ. 1

खून में सना तीर और बिस्तर में जज्ब खून के गहरे धब्बे बताने की कोशिश कर रहे थे कि हत्या ही हुई होगी।"[3]

इस हत्या के पीछे किशनपुर शहर का इतिहास छिपा है, जहाँ नोटों से भरी थैलियों और ताकत के बल पर आदिवासी टोले गायब किए जाते रहें। उनकी जमीन छीनी जाती रही, उनके गाँव उजाड़े जाते रहे । इस शहर का इतिहास जितना ही पुराना है आदिवासी जमीन की लूट का इतिहास। अपनी जमीनों से उजाड़ दिए गए लोग पाते हैं कि उनका देश गायब होता जा रहा है और वे एक ऐसी जमीन के निवासी हैं, जो दुनिया में कहीं नहीं हैं ।

उपन्यास की कथावस्तु दो रूपों में चलती है, एक तो यह कि पत्रकार किशन विद्रोही के संघर्ष की कहानी से लेकर उसकी हत्या तथा डायरी तक की घटनाओं का क्रमानुसार वर्णन किया गया है जिसमें कारपोरेट, राजनेता, अफसरशाही, मीडिया-भूमाफिया गठजोड़ का मुंडा समाज पर हमला करना और दूसरी तरफ सोमेश्वर द्वारा उपन्यास में मुंडा जाति की अस्मिता और इतिहास का आख्यान, भौगोलिक स्तर पर आदिवासी क्षेत्रों की यथास्थिति की घटनाओं का क्रम, भौगोलिक दृष्टिकोण का वर्णन करते हुए वहाँ की नदियाँ, जंगल, पर्वतों, जलवायु और मौसमों का उल्लेख सोमेश्वर मुंडा के चरित्र से गति प्राप्त करता है ।

लेखक ने उपन्यास को डायरी शिल्प में लिखा है। जिस प्रकार डायरी लेखन में तिथिवत घटनाओं का विवरण दिया जाता है उसी प्रकार इस उपन्यास में भी तिथिवत घटनाओं को किशन विद्रोही की डायरी के माध्यम से दिखाया गया है । इसके अध्ययन से यह पता चलता है कि लेखक ने मुंडा आदिवासी की सांस्कृतिक परिदृश्य की मुकम्मल तस्वीर खींचने की कोशिश की है । किसी आदिवासी व्यक्ति की मृत्यु के बाद दाह संस्कार की परंपरा की ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त होती है। इन सभी वर्णित घटनाओं का मुख्य केंद्र किशनपुर है। जिसका बहुत समय पहले से ही अपना एक इतिहास रहा है । इसकी प्रसिद्धी का मुख्य कारण यहाँ की ऊँची-

[3] गायब होता देश, पृ. 4

ऊँची पहाड़ियाँ, प्रकृति का खुलापन, यहाँ की हरियाली, तरह-तरह के वृक्ष, पलाश, सेमल, महुआ, साखू तथा कचनार की छाया, उतार-चढाव इत्यादि ये सब मानव मन को आनंदित और आहलादित करती हैं। इन सब की वजह से "इस आत्मिक ऊर्जा के पावर हाउस का ही आकर्षण है कि जैन धर्म के चौबीस तीर्थकरों में से उन्नीस या बीस किशनपुर के पार्श्वनाथ पहाड़ पर आते हैं और यहीं अरिहंत को प्राप्त करते हैं। यह पार्श्वनाथ की पहाड़ी यहां के आदिवासी संतालों का मरांगबुरु है।"[4]

'गायब होता देश' उपन्यास में मुंडा समाज के पढ़े-लिखे लोग अपने समाज के बुद्धिजीवियों में ढलने की प्रक्रिया से गुजरतें दिखते हैं। डॉ.सोमेश्वर मुंडा ही ऐसे पात्र हैं जो उपन्यास में शुरू से ही एक बुद्धिजीवी के रूप में उपस्थित हैं। सोनामानी दी शिक्षिका हैं और अनुजा पहले एक सरकारी अफसर थी फिर एन.जी.ओ की कार्यकर्ता और फिर पत्रकार रही है। नीरज पालीटेक्निक तक पढ़ाई की है, वीरेन भी पढ़ा-लिखा है। इन पढ़े-लिखे मुंडा पात्रों का अपने समाज के संघर्षों के संगठनकर्ता की बनने की प्रक्रिया किसी ख़ास घटना से शुरू होती है । यह पक्रिया शुरू होने के बाद से सचेत होते हैं ।

पत्रकार किशन विद्रोही की हत्या की गुत्थी सुलझाने के क्रम में प्रशिक्षु पत्रकार राकेश को डायरी, जेरोक्स और अखबार के पन्ने हासिल होते हैं। इन पन्नों से किशन विद्रोही की त्रासदी की कथा की शुरुआत होती है। यही त्रासदी उपन्यास में 'सोना लेकन दिसुम' के गायब होते जाने की तकलीफ भी है ।

पत्रकार किशन विद्रोही के माध्यम से मुंडा जनजाति की सभ्यता, संस्कृति और उनके इतिहास का वर्णन किया गया है। पत्रकार उस इलाके में जाता है जहाँ हाल ही में मुंडा आदिवासी के परमेश्वर पाहन को बंगला देश के युध्द में निर्भीकता से लड़ने के कारण उसे स्वयं राष्ट्रपति के हाथों 'सैनिक परमवीर चक्र' प्राप्त हुआ। फिर वह सेवानिवृत्त होकर अपने गाँव

[4] गायब होता देश, पृ. 197

एदलहातु आ जाता है और देखता है कि एक बड़ी कंपनी ग्रीन एनर्जी द्वारा दुलमी नदी पर बाँध बना कर मुंडा आदिवासियों की गाँवों को डुबो देने की योजना चलरही है । वह इसके शुरू होने से पहले ही विस्थापन के विरोध में आन्दोलन शुरू कर देता है । इससे नाराज होकर भ्रष्ट व्यवस्था पहले उसे नक्सलबड़ी घोषित करती है और फिर एक दिन रात में इंस्पेक्टर कुंवर वीरेंद्र प्रताप के हाथों उसकी हत्या करवादी जाती है । इसके बाद विकास और विस्थापन के नाम पर जंग शुरू होती है। भ्रष्ट पुलिस इंस्पेक्टर के.वी.पी मुंडा ग्रामीणों के हाथों मारा जाता है । इसलिए पुलिस आदिवासियों के गाँवों को नक्सलवादी गाँव घोषित करती है और एतवा मुंडा, संजय जायसवाल, अमरेन्द्र मिश्र जैसे निर्दोषों को नक्सलवादी घोषित कर एक-एक को मारती रहती है। इन समस्याओं तथा परमेश्वर पाहन की हत्या की गुत्थी सुलझाने के लिए किशन विद्रोही किशनपुर एक्सप्रेस के पत्रकार के रूप में मुंडा आदिवासियों के गाँव हिराहातु आते हैं ।

किशनपुर एक्सप्रेस समाचार पत्र के माध्यम से दिखाना चाहता है कि आदिवासी क्षेत्र की सच्ची सूचनाओं को एकत्रित करने से लेकर समाचार छपने तक किस प्रकार पत्रकारों और संपादकों पर राजनीति दबाव रहता है- “सरकारी घोटालों के धारावाहिकों से बरसे सोने की अशर्फियों ने पत्रकारिता जगत के बड़े-बड़े दिग्गजों को पेट के बल रेंगने वाले कीड़ों में तब्दील कर दिया था।”[5] लेकिन इससे विद्रोही पर कोई असर नहीं हुआ था । इन व्याख्यानों ने जननायक, बुध्दुबीघा और आन्दोलन को तथा उनके त्याग और संघर्ष के संस्मरणों ने हृदय को लगातार ऊपर उठाते हुए श्रध्दा के स्तर तक पहुंचा दिया था । पत्रकारिता के मानदंड चौबीस कैरेट शुध्द थे लेकिन पूंजीपति, राजनेता, बहुराष्ट्रीय अफसरों के दबाव के कारण आज प्रबंध की नजर में सबसे नेगेटिवफैक्टर हो गया था । इन कारणों से मुंडा आदिवासी समुदाय को जन्म से अपराधी तथा नक्सली बताकर उन पर पुलिस द्वारा हमला किया जाता रहा है । आदिवासी अपनी हक की लड़ाई लड़ता है तो उसे नक्सली घोषित कर दिया जाता है ।

[5] गायब होता देश, पृ. 6

देश को स्वतंत्र हुए लग भग सत्तर वर्ष हो रहे है फिर भी आदिवासियों के जंगल और जमीन पर अतिक्रमण हो रहा है । भूमिअधिग्रहण का खेल आजादी के बाद से और भी तेजी से बढ़ रहा है । इसी वजह से आदिवासी विस्थापित ही नहीं, बल्कि अपनी सभ्यता और संस्कृति से कोसों दूर होते जा रहे है । अपनी जल-जंगल-जमीन के लिए आदिवासी तब से अब तक लड़ते ही आ रहे हैं । पहले भी सवाल जमीन का था आज भी सवाल जमीन का ही है फिर कैसे कहें कि आजादी मिली है?

आदिवासी इलाके में भूमिगत संपदा का गैर-आदिवासियों द्वारा खूब लाभ उठाया गया जैसे वीरेंद्र प्रताप सिंह, अशोक पोद्दार, सविता पोद्दार, निरंजन राणा, नवल पांडे आदि छोटे-मोटे आधिकारी तथा दलालों को लखपति बनने में देर नहीं लगी। कोयला माफियाओं, बाक्सट-आयरन माफियाओं की ऊपरी कमाई के पैसो से सब माला-माल हो रहे थे और आदिवासी लगातार विस्थापन का शिकार । फिर भी वे अपने अस्तित्व और अस्मिता की लड़ाई लड़ रहे थें । धीरे-धीरे आदिवासियों की अपनी पहचान समाप्त होते जा रही है। उनकी अपनी संस्कृति किशन विद्रोही पत्रकार की तरह समाज से गायब होती जा रही है। आदिवासी समुदाय की अपनी पहचान के पुख्ता प्रमाण है इसी वजह से लेखक ने 'हिंदी महासागर' के माध्यम से बताया कि "तुमने कहाँ छुपा रखा है हमारे कुमारिककान्तं को, हमारा लेमुरिया, हमारी प्राचीन उर्वर मातृभूमि? क्यों तुमने हजारों साल पहले हमारे उनचास प्रान्तों को डुबो दिया, नौ सौ मील की भूमि निगल ली? कहाँ है हमारी प्राचीन नदी पहरुली? कुमारी नदी की सुनहरी धाराएं कहाँ खो गई? कहाँ गया अतुलनीय सौन्दर्य से पूर्ण पर्वत कुमारी?"[6]

आदिवासी पात्र नीरज, वीरेन, अनुजा, सोनामानी दी के द्वारा अपनी सभ्यता, संस्कृति, जल, जंगल, जमीन बचाने के लिए लगातार की जा रही कोशिशों को बखूबी अभिव्यक्त किया है जबकि कौशलेन्द्र धर्माधिकारी ने अपनी रिपोर्ट के साथ-साथ किशनपुर की भूमि घोटाले से जुड़ी

[6] गायब होता देश, पृ.132

सारी एक्सक्लूसिव खबरों को भी नत्थी (कागज़ आदि के टुकड़ो को एक में गूंथना) कर राष्ट्रपति भवन, अनुसूचित जनजाति आयोग, प्रधानमन्त्री कार्यालय जहाँ-जहाँ संभव हो सका वहाँ-वहाँ आधिकारिक पत्र भेज़े जाते रहे। किस तरह आदिवासी इलाकों में कारखाने बनाकर उनकी जमीनों को अपार्टमेन्ट में बदला जा रहा है। पूंजीपति वर्ग जमीन को हथिया लेने के बाद उस क्षेत्र के कुछ पढ़े-लिखे युवक-युवतियों को क्षणिक लाभ का प्रलोभन देकर काम करवाया जाता है जबकि काम के मुताबित श्रम (मूल्य) नहीं दिया जाता है । यहाँ तक कि गैर-आदिवासी लोगों को रहने के लिए अपार्टमेन्ट दिया जाता है पर आदिवासियों को नहीं। इसी सन्दर्भ में नवल पांडे का कहना है कि "बिजनेस कर रहे हैं बिजनेस कीजिए, पालिटिक्स नहीं । ईकोल-कबाड़-चुहाड़ लोग जो हमारा लेबर है, घर-बाहर खट्ता है, रिक्शा चलाने वाले, दतुवन बेचने वाले की ई औकात कि हमारे बनाए अपार्टमेन्ट में रहे। हमारे बराबर में रहे। काहे सिस्टम बदलना चाह रहे हैं, रिपोर्टर साहब। चुपचाप जो चल रहा है चलने दी जिए। खोपड़ी ज्यादा मत चलाइए।"[7] जैसे ही आदिवासी क्षेत्र में कंपनियां आती है तभी से इन आदिवासियों का विस्थापन और पलायन बड़ी संख्या में हुआ है। जो भी आदिवासी युवक इसके खिलाफ आवाज उठाता है उसे नक्सली बता कर मार दिया जाता है ।

सिंडिकेट, टोटल चेंज और किशनपुर एक्सप्रेस जितने भी आदिवासी समस्या तथा उनके सुधार को लेकर लिखे जाने वाले पत्र-पत्रिकाएँ थे इनका मुख्य उद्देश्य आदिवासियों की समस्या को दिखाना और अपने संघर्ष द्वारा सरकार से इन समस्याओं के समाधान की अपील करना भी था। समाचार पत्र या पत्रिका के माध्यम से आदिवासी समुदाय के प्रति हो रहे शोषण, अन्याय और अत्याचार को हु-ब-हु दिखाना था लेकिन उपरोक्त तीनों संस्था धीरे-धीरे पूंजीपति या सरकार के गिरफ्त में आकर अपना काम चाहकर भी नहीं कर सकते थें। सच्चे संपादक और पत्रकार को टार्गेट बनाकर उनकी हत्या कर देना वहाँ के दलालों का काम हो गया था ।

[7] गायब होता देश, पृ.153-154

किशनपुर में बढ़ी संख्या में आदिवासी लोग निवास करते हैं । यहाँ हर दिन कोई न कोई राजनीतिक पार्टी और बिजनेसमैन आते रहते हैं। ये 'दुरंगदाह बचाओं संघर्ष समिति' तथा 'ग्रीन किशनपुर क्लीन किशनपुर' और 'नों लंस नों प्रोजेक्ट' जैसे योजनाएँ बनाकर यहाँ के लोगों को लाभ पहुंचाना और इनकी गरीबी को दूर करना चाहते हैं। परन्तु इन नेताओं की गिध्द दृष्टि आदिवासियों की जंगल और जमीन पर थी जिसे ये किसी न किसी बहाने हाशिल करना चाहते थे । आदिवासियों की ही जमीन पर अस्पताल खुले, अपार्टमेन्ट बने लेकिन इन्हीं आदिवासी लोगों के इलाज के लिए डॉक्टरों का व्यवहार तो ऐसा है जैसे इंसानियत को घोलकर पी गए हैं "अब प्रसव के लिए जनाना लोग आई है तो उस को भी दू बोली । रतिये में दरद उठता है? तंग करने के लिए और कोनो टाइम नयं मिलता है ? अब जो पहलौंठ-पहला बच्चा के लिए भी आई है उसको भी बोलेगा कि बच्चा पैदा करने का मशीने बन गई है का? मरद को और कोनो काम नयं है? नब्ज़ तक छूने के लिए भी तैयार नहीं। अपना खटिया लेकर जाइएगा तो बेड मिलेगा। आपको पानी चढ़ रहा है तो आप ही पानी का बोतलवो थामे रहिए या आपका संगी-हित पकड़ कर खड़ा रहे।"[8] इससे पता चलता है कि उनके साथ किस तरह से व्यवहार किया जाता है ।

मुंडा आदिवासी समाज में वे कोई काम अकेले नहीं कर सकतें है । कृषि संबंधी काम हो या किसी का मकान बनवाना हो सभी एक साथ मिलकर एक दूसरे की मदद करते हैं । 'गायब होता देश' उपन्यास में यही सामूहिकता का काम ही दिखाई देता है। "जैसे एक की ख़ुशी में पूरा घर, पूरा टोला, पूरा हातु खुश होता है वैसे ही घर में एक के बीमार पड़ने से पूरा परिवार बीमार महसूस करता है । इसी मानवीय अहसास ने होड़ो (मानव) पैथी को जन्म दिया।"[9] आदिवासी समाज में औरतों को पुरुषों के बराबर का दर्जा मिलता है पर इस उपन्यास में बड़े स्तर पर पुरुषवादी संस्कृति या पितृसत्तात्मकता की झलक दिखाई देती है। इस सन्दर्भ में अनुजा और रमा में बातचीत चलती है "मुझे इस पर गुस्सा आता है कि क्यों ये हमारी किस्मत है और

[8] वही, पृ.228

[9] गायब होता देश, पृ. 239

यही हमारी सीमा कि हम यह देखते रहें कि पुरुषों की निगाहों को हम कैसे दीखते हैं। छुटपन में सचेत हो जाना पड़ा कि आखिर क्यों लड़के-मरद इतना गौर से ताकते रहते हैं।"[10]

उपन्यास में ऐसे कई पात्र हैं जो किशन विद्रोही की हत्या की गुत्थी को सुलझाने की कोशिश करते हैं और 'स्वयंसेवी संगठन' के द्वारा आदिवासी क्षेत्र की सच्चाईयों को जनता से रू-ब-रू करवाते हैं। साथ-ही-साथ उन लोगों पर अचानक गोली बारी शुरू हो जाती है और उन्हें मार दिया जाता है। जैसे वीरेंद्र दा, इतवा पाहन, जैसे पात्रों के साथ यही होता है । वही स्त्री पात्र को अगर देखा जाए तो सविता पोद्दार पहले तो आदिवासियों की शुभचिंतक बनती हैं फिर बाद में नेताओं की चापलूसी करके केंद्र में राज्यमंत्री बन जाती है तो नरेश शर्मा बाजाप्ता चुनाव जीत कर राज्य में कैबिनेट मंत्री बन जाता है ।

डॉ.सोमेश्वर मुंडा बचपन से ही पढ़ाकू किस्म के थे। हाईस्कूल में पूरी अंग्रेजी की डिक्शनरी रट गए थे। और उन्होंने एन्थ्रोपोलॉजी, ज्योग्राफी में डिग्रियां हासिल भी की । सोमेश्वर मुंडा विदेश जाकर पढ़-लिखकर आए थे। वे सत्तर के दशक में कैंब्रिज यूनिवर्सिटी पहुँचने वाले दूसरे आदिवासी थे। इसी काबिलियत को देखकर एक विदेशी लड़की रोजालिन उनसे शादी कर लेती है और बाद में सोमेश्वर मुंडा की प्रतिभा और ताकत का इस्तेमाल करके निकल भागती है। सोमेश्वर मुंडा अपने पुरखों के इतिहास और ज्ञान-विज्ञान की लुप्त विरासत के पुनराविष्कार के क्रम में वैज्ञानिक अध्ययन करते हैं । उस समय एक बड़ी राजनीतिक पार्टी द्वारा सोमेश्वर मुंडा के राज्य सभा के लिए किए मनोनयन को साजिश बताती है हालांकि उसमें सोमेश्वर मुंडा फंसते नहीं और अपने गाँव लौट कर जनांदोलन चलाने वाले साथियों का साथ देते हैं ।

सोमेश्वर मुंडा ने लेमुरिया की कहानी किशन विद्रोही को सुनायी थी । कैसे मुंडा लोगों का मूल स्थान समुद्र में समा गया और इन लोगों के पूर्वजों का ढेर सारा ज्ञान भी उसी में समा

[10] वही, पृ. 267

गया । मुंडा लोगों ने धरती माता सरना माई, सिंगबोंगा से जो भी सीखा था उसे संजो कर रखा था । सबकी इज्जत करना सम्मान करना, कम में संतोष करना और ज्ञान बढ़ाना यही इनकी ज़िन्दगी का मकसद था। लेमुरिया का अपना एक इतिहास है जो सोमेश्वर मुंडा बताते है "आज जहाँ हिंद महासागर और अरब महासागर है वहीं लेमुरिया था । क्रिटेशस काल की समाप्ति एवं आदि नूतन काल के प्रारंभ होने के समय प्राचीन महाद्वीप का विखंडन हुआ । उसका एक हिस्सा पानी में डूब गया । बाकी जमीन ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका और दक्षिण भारत में बंट गई । इस महाविखंडन के बाद भी भारत और अफ़्रीका भूसंधि के माध्यम से जुड़े रहे। यह भूसंधी ही लेमुरिया थी। लेमुरिया भी आठ लाख वर्ष इसा पूर्व से 9654 वर्ष इसापूर्व की अवधि में धीरे-धीरे डूब गया । मेडागास्कार, मारीशस, मालदीव, लक्षद्वीप उसी लेमुरिया महाद्वीप के अवशेष हैं।"[11]

मुंडा आदिवासियों के इतिहास पर सोमेश्वर मुंडा ने बहुत काम किया था । मसना की ससनदिरी और ससनदिरी के पत्थर जिन पहाड़ों से लाए जाते हैं उनके बीच के संबंधों पर काम किया तथा उलीहातु प्रयोग से जुड़े उनके अध्ययन के सारे कागज-पत्तर, डायरियां, नोट्स और बहुत कुछ काम की चीज़े बहुत कुछ जो महसूस किया था उसी तरह लिखा भी था लेकिन उनकी पत्नी अमेरिका वाली रोजालिन सब उठा-पुठा कर चली गयी । सोमेश्वर को कभी-कभी लगता था कि वह सब समझने बूझने और लूटने के लिए ही उनके साथ आई थी । इस विषय पर वह आज तक दुखी हैं । जिस स्त्री के कारण पूरे मुंडा समाज की नजर से गिया गया, सैकड़ों बड़े-बुजुर्गों, संगी-साथियों सबके साथ धोखा खाया, लेकिन ताकत इकट्ठा करने वाले, धन इकट्ठा करने वाले ने उन्हें दुश्मन माना था हज़ारों साल से यह दुश्मनी चल रही है इसी संबंध में आदिवासी समाज पर सदियों से हो रहे अत्याचार तथा भेदभाव पूर्ण रवैये से क्षुब्ध होकर

[11] वही, पृ. 131

उपन्यास का आदिवासी पात्र एतवा मुंडा एक गीत गाने लगता है जिसमें वह ताप की तासीर को बदलने की बात कहता है-

“लोलोते साकाम उरूडूआ

लोलोते मुदुको तोरोएगो:आ

लोलोते होटो:तेताड़ा

लोलोते हासा केटेगो:आ

लोलोते अंकुरि उपाना

लोलोते साकाम सुडाओ:आ

दारूरे बाओ:आ, जोओ:आ

लोलोते जोओको जारोमो:वा

ताप से पत्तियां झरती हैं

ताप से कुंदा राख होता है

ताप से कंठ सूखता है

ताप से मिट्टी कड़ी होती है

लेकिन ताप से ही अंकुर निकलता है

ताप से पत्तियां निकलतीं हैं

पेड़ों पर फूल, फल लगते हैं

ताप से फल पकते हैं"[12]

किशन विद्रोही की हत्या होती है लेकिन लाश का न मिलना ये सब भ्रष्ट शासन तन्त्र का ही परिणाम है। तथा उपन्यास के अंत में यह दिखाया गया है कि पत्रकार किशन विद्रोही की हत्या का राज एक चित्र के माध्यम से पता चलता है। पेंटिग से यह मालूम होता है कि विद्रोही की हत्या किसी और ने नहीं बल्कि उसके सगे-संबंधी यहाँ तक कि दादा-चाचाओं ने मिलकर की। यह भी हो सकता है कि गैर-आदिवासी दिकुओं द्वारा विद्रोही के परिवार को आधार बनाकर ये हत्या करवाई गई हो।

संक्षिप्त में अगर कहा जाए तो यह उपन्यास मुंडा समुदाय के शोषण, लूट, उनकी पीड़ा, उनेके संघर्ष से उपजे समाज पर केन्द्रित है। किशन विद्रोही के माध्यम से उपन्यासकार वंचितों की व्यथा-कथा की खोज-खबर देने के क्रम में यह बताना चाहते है कि आदिवासियों का संघर्ष कुछ वैसा ही है जैसा कि भारतीय जनता में ब्रितानी साम्राज्य था। आजादी के बाद भी आदिवासी इलाके में हो रहे जमीन विस्थापन तथा इससे उत्पन्न समस्याओं को आदिवासी किस तरीके से झेलते है तथा जल, जंगल, जमीन के लिए अपनी जान की परवाह न करते हुए लड़ते रहते हैं। इस उपन्यास में लेखक ने स्पष्ट किया है कि इन आदिवासियों को नक्सलवादी घोषित करके उन्हें जेल में बंद कर दिया जाता है। आदिवासियों की भाषा, संस्कृति उनकी पहचान और उनकी अमूल्य संपत्ति है। आदिवासियों का पूरा इलाका ही तीव्र गति से गायब होते जाना उनके अस्तित्व का द्योतक है।

[12] गायब होता देश, पृ. 107

2. 'आकुपच्चनि देशम्' (हरा देश) की कथावस्तु :

'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास आंध्रप्रदेश राज्य के नल्ल-मल पहाड़ों में जीवन बिता रहे चेंचु आदिवासियों पर केन्द्रित है। यह दु:खात्मक उपन्यास है। चेंचु जाति के लोगों का दु:ख व वेदना भरा संगीत इस उपन्यास में पाठक को आरंभ से अंत तक बांधे रखता है।

चेंचु आदिवासियों का पेशा शिकार करना, शहद निकालना, महुए के पत्ते चुनना, जमीकंद, इमली, बबूल आदि जंगल की प्राकृतिक संपदा ही इनके जीवन का साधन व माध्यम है। तीर, छुरी, कुदाल यही उनकी सम्पत्ति व हथियार भी हैं।

लेखक ने 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में चेंचु आदिवासियों की जीवन-गाथा को वर्णित किया है, जो हरे-भरे जंगलों, पहाड़ों में सहज सिद्ध प्रकृति में जीवन बिता रहे हैं। उपन्यास है तो 'हरा भरा देश' लेकिन हरा भरा जीव शोषण का शिकार बन, हरे पत्तों पर इनके खून के निशान हर कदम पर दिखाई देते है। पुस्तक का आवरण चित्र भी चेंचु आदिवासियों की परिस्थितियों को उजागर करने वाला है।

उपन्यास में कथा का आरंभ सूर्यास्त के समय प्रकृति के सुंदर वर्णन से होता है। वीरा (वीरानरसिंहम) उपन्यास का नायक है। उपन्यास का आरंभ वीरा के उस्मानिया विश्वाविद्यालय में प्रवेश से होता है। उसको देखते ही समझ में आ जाता है कि वह हैदराबाद का व्यक्ति नहीं है। कुछ महीनों में ही वीरा में परिवर्तन आ जाता है। एम.ए., पी.एच.डी की पढ़ाई पूरी करके शोध छात्र के रूप में सबसे विदाई लेते हुए मोहिनी से उसका परिचय होता है। दोनों के बीच बातचीत चलती रहती है।

मोहिनी समाजशास्त्र में एम.फिल की छात्रा है। मोहिनी पाँच साल तक एम.एल(मार्क्सिस्ट लेनिन) पार्टी की सचिव थी। वह धीरे-धीरे पार्टी को छोड़कर 'स्त्री शक्ति' नाम से एन.जी.ओ (स्वयंसेवी संस्था) की स्थापना करती है। इस संस्था का मुख्य उददेश्य-

घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओं की सहायता करना और आदिवासियों के अधिकारों के लिए आन्दोलन करना, स्त्री कर्मचारी सुरक्षा, विस्थापन की समस्या आदि पर काम करना है ।

वीरा और मोहिनी के बीच गहरा संबंध बन जाता है जिससे वे मित्रों के समक्ष रजिस्टर ऑफिस में शादी कर लेते हैं। लेकिन कुछ ही दिनों में मोहिनी वीरा से ऊब सी जाती है। उसके संबंध विश्वविद्यालय, अनाथालय तक ही सीमित थे। वीरा श्रीशैलम क्षेत्र के गूडेम (गाँव) का रहनेवाला है । वह एम.एल पार्टी और आदिवासी आंदोलन के बारे में कुछ नहीं जानता था । वह एक सफेद कागज की तरह था। वीरा और मोहिनी एक-दूसरे के साथ घुल मिल नहीं सके क्योंकि दोनों के बीच एक फासला, विचारों की भिन्नता थी । मोहिनी कहीं उससे दूर न हो जाय, इस डर के साथ वीरा जीने लगता है और अपनी बचपन की यादों को याद करता है, जहाँ वह सडकों पर भूखा, प्यासा, नंगा घूमा करता था ।

गर्मी के मौसम में हैदराबाद में घर से बाहर निकलना मुश्किल होता है लेकिन मोहिनी उन्हीं दिनों में बहुत व्यस्त रहती थी। मोहिनी की संस्था व अन्य संस्थाओं ने मिलकर 'नई दुनिया' नाम से बहुत बड़े पैमाने पर सभा का आयोजन किया था। वीरा के लिए यह सब एक नया अनुभव और एक नयी दुनिया थी। मोहिनी के लिए एक ऑफिस उसके चारों ओर काम करने वाले कर्मचारी, सत्ता व अधिकार का जाल सा बना रहता था। यह सारी चीजें वीरा के लिए एकदम नयी थी। मोहिनी के द्वारा प्रारंभ किए गए 'स्त्रीशक्ति' नामक एन.जी.ओ में भाग लेने वाले लोग, वकील, समाज सेवक आदि बीस लोग होते हैं । वीरा को मोहिनी हर समस्या का सामना करनेवाली जादूगरनी की तरह दिखाई देती है । मोहिनी वेलिगोंडा बाँध परियोजना के बारे में वीरा को बताती है ।

वेलिगोंडा बाँध परियोजना (प्रकाशम जिला) के कारण चेंचु गूडेम (गाँव) में बाढ़ आने की सम्भावना थी। उन आदिवासियों को बाढ़ से बचाने के लिए उनको जनवास व नगरों के पास लाना उस परियोजना का मुख्य उद्देश्य था। यह परियोजना विदेशी संस्था के द्वारा मिलने वाले

फंड (निधि) से चलने वाली थी । यहाँ बाँध का काम पूरा होने पर दस लाख रुपय लाभ मिलेंगे । जंगलों, पहाड़ों में जीवन बिता रहे चेंचु आदिवासियों को मनाना इस परियोजना का मुख्य विषय है । मोहिनी दृढ़ विश्वास से कहती है कि 'ये काम वीरा ही करेगा दूसरा कोई नहीं' क्योंकि वह सोचती है इस काम से उसका जीवन सफल हो जाएगा । अपने क्षेत्र में फिर से वापस जाने का उसे मौका मिलता, इस तरह मोहिनी वीरा को उत्तेजित करती है। ये सब बातें सुनकर वीरा हैरान हो जाता है और सोचने लगता है कि, अत्यंत महत्वपूर्ण उददेश्य से करने का काम एक व्यापार के रूप में किया जा रहा है । वीरा इस परियोजना पर ध्यान देता है । मोहिनी वीरा को गाँव भेजने की तैयारी करती है । तब वीरा अपने बचपन की यादों में खो जाता है। उन यादों में नल्ल-मल पहाडों में, जंगलों में जीवन बिता रहे चेंचु आदिवासी, प्रकृति से जुड़े हुए हैं। उसी क्षेत्र का चेंचु आदिवासी वीरा है। वीरा उन लोंगों से बीस साल पहले ही अलग हो गया था, क्योंकि चेंचु गूडेम (गाँव) में फैल रही मलेरिया बीमारी और भूख से मर रहे बच्चों को देख कर उसकी माँ ने उसको उस क्षेत्र से बाहर नगर की ओर जाने वाली सड़क पर छोड़ दिया था। वीरा सड़क के किनारे चलते-चलते गाँव, जंगल, पहाड़ अदृश्य होने लगे थे। रास्ते में वीरा को बकरियों की देखभाल करने वाले ग्वाल मिलते हैं । वे ही वीरा की परिस्थितियों को समझ कर उसे सरकारी बालाश्रम में छोड़ देते हैं ।

वीरा माँ की यादों से बहुत दुखी रहता है । उसके पिता बचपन में ही मलेरिया बीमारी से गुजर गये थे । वीरा को माँ का रूप अक्सर जंगलों में दिखने वाले लालफूल की तरह दिखता है । बिना कंघी किये बाल, हवा में इधर–उधर हिलते शुद्ध जंगल के फूल की तरह वह रहती है । उसकी माँ को चामंति फूल (गुलदाउदी फूल) ज्यादा पसंद थे, इसीलिए चामंति के नाम से गाँव के लोग उसको जानते थे। वीरा को माँ की हंसी जंगल में खिलते फूलों की तरह लगती थी ।

वीरा की माँ सुबह उठते ही हंसिया, कुदाल, चाकू, टोकरी लेकर जंगल की तरफ निकल जाती है । तरह-तरह के जमीकंद, महूए के पत्ते आदि लेकर लौटती थी और शराब पीकर हफ्ता

भर अपनी झोपड़ी में निर्जीव शव की तरह सोती है। कुछ दिनों के बाद वीरा की माँ ही नहीं, बल्कि उस चेंचु गूडेम के लोग भी जंगल जाना भूल जाते हैं। किसी के घर में चुल्हा नहीं जलता, भूख को भूल कर दिन-रात बिताते हैं। बीस साल की यादें वीरा को जंगल, पहाड़ो में उनके भूले हुए क्षेत्र और बचपन की हर याद उसके मन को दुःख पहुंचाती है ।

मोहिनी, वीरा को गाँव भेजने की तैयारी करती है । दोनों बाज़ार जाते हैं, खान-पान की तैयारी भी कर देती है । यह सब वीरा को नया लग रहा था क्योंकि भूले चुके क्षेत्र में फिर एक बार जाना वहाँ से परिचय होना, उसे एक तरह की फिल्म सा लग रहा था । इस बात पर उसे गुस्सा भी आ रहा था ।

वीरा को गाँव भेजने से पहले मोहिनी उसकी मित्र सपना से उसका परिचय करवाती है, क्योंकि सपना को चेंचु आदिवासियों के बीच काम करने का अनुभव था। तीन बार भयंकर बीमारियों से लड़कर अपना जान बचाई थी। उसके यह अनुभव वीरा के उपयोग में आयेंगे यही सोचकर मोहिनी सपना से वीरा का परिचय करवाती है । सपना अपने अनुभव वीरा को बताती है। वह कहती है कि आदिवासियों के लिए कुछ करना उसकी इच्छा है पर दुनिया में कोई इन्सान-इन्सान की तरह नहीं है । तब वीरा सोचता है, जीवन बिताना कितना कठिन है । इसका मानना था कि जीवन आनंद के साथ बिताना हर मनुष्य का अधिकार है ।

वीरा मोहिनी से जब दूर होता है उस समय उसकी आखें दुःख से छल-छला जाती है। चेंचु गूडेम (गाँव) के पुनर्वास का काम रेवेन्यु अफसर या आदिवासी संस्थाओं का है। लेकिन एक व्यक्ति (वीरा) का उस क्षेत्र के आदिवासियों को मनाना एक संदेह है। मोहिनी का कहना है कि ये काम एक नौकरी की तरह समझो, परियोजना के पूरा होने पर उसको दस लाख का लाभ होगा । चेंचु गूडेम के लोगों के लिए मार्कापुरम के निकट निवास की जगह की व्यवस्था कर दी गई थी जिसके डाक्युमेंट्स (पत्र) वीरा को दिए जाते हैं । उस जगह पर घर बनाना दूसरी संस्था का काम है । वीरा की एक ही जिम्मेदारी है उनको विस्थापित करना ।

मोहिनी सोचती है वीरा को इस काम से मना कर दू लेकिन फिर से मन में आता है कि इतने आन्दोलन करने के बाद थोड़ा-सा अपने बारे में भी सोचें, कुछ क्षण सुख से जीवन में बिताएँ, इस सोच से वह उसे गाँव भेजती है ।

वीरा की यात्रा का आरंभ होता है। गाड़ी नल्ल-मल पहाड़ों की पगडंडियो से मुड़-मुड़ कर चलती है जिससे वीरा के मन में हलचल होने लगती है । उसे बचपन के पहाड़, जंगल, वृक्ष, हवा के झोंके गाने की तरह सुनाई दे रहे थे। वीरा मार्कापुरम गाँव पहुंचता है । चेंचु गूडेम के पास के गाँव में रहने वालों से वीरा मिलता है। परियोजना का और अपना परिचय देता है कि "मैं इस गूडेम में ही पैदा हुआ हूँ, गूडेम का नाम तो पता नहीं है, लेकिन मैं चेंचु आदिवासी हूँ, मेरी माँ जीवित होगी तो इसी गूडेम में होगी।"[13] इन बातों पर अलल सुन्दरम कहता है कि, 'तुम चेंचु आदिवासी नहीं दिख रहे हो, लेकिन यहाँ के लोग इसके विरोध में हर दिन हड़ताल, आन्दोलन कर रहे हैं । यह तो चेंचु आदिवासियों को पूछनेवाला ही नहीं हैं, अगर बाढ़ आने पर वे अपना सामान लेकर दूसरी तरफ निकल जाते हैं, फिर आप एक ही बार उनके लिए घर बनाने आयें, चाहे तो कोशिश कर लो । इस बात पर उसे कुछ समझ में नहीं आता है ।

वीरा मोहिनी को फोन पर अलल सुन्दरम के बारे में बताता है, बातचीत के दौरान मोहिनी कहती है कि, "कोई भी सामने नहीं आयेगा, उदास न होकर आगे बढ़ते रहो, तुम्हारी माँ मिलने तक आगे बढ़ते रहो, जेब में पहचान पत्र रखना, पुलिस से संभल कर रहना, वह गोट्टीपड़िया गाँव में धैर्य शाली महिला नवमणी दलित कार्यकर्ता है, वहाँ के लोग उनकी बातों का समर्थन करते हैं, उनसे मिलना, अलल सुन्दरम उन्हीं का बेटा है।"[14]

वीरा थोड़ा उत्साहित हो कर गोट्टीपड़िया गाँव पहुंचता है । उस गाँव की ऐतिहासिक व्यक्ति नवमणी है । कुछ ही दिनों में ये गोट्टीपड़िया गाँव अदृश्य होने वाला है, क्यूंकि वेलिगोंडा

[13] आकुपच्चनि देशम, पृ.30

[14] वहीं, पृ. 30

बाँध परियोजना का काम पूरा होने से गोट्टीपड़िया गाँव के साथ पन्द्रह गाँव और दो चेंचु गाँव जलमग्न होने वाले हैं। वीरा नवमणी के घर पहुंचता है, लेकिन उसी दिन सुबह नवमणी की मृत्यु हो जाती है। गाँव के लोग नवमणी की मृत्यु से बहुत दुखित होते हैं, क्योंकि नवमणी ने उन लोगों को नया जीवन दिया था। सब लोग इसे पुरुडू दादी (दाई दादी) कहते थे । वे बूढ़ी हो गयी थी फिर भी उनकी आखों में तेज दिखता था । गाँव का एक व्यक्ति नवमणी के बारे में वीरा को बताता है कि- नवमणी का बेटा अलल सुन्दरम 'मंडल परिषद् अध्यक्ष' पद के लिए चुना गया है । उस दिन गाँव में कोलाहल मच गया था । लोगों का सोचना था कि अलल सुन्दरम की जीत में गोट्टीपड़िया गाँव भी जीत गया है। उसकी माँ बहुत दुखी थी, क्योंकि अलल सुन्दरम जीत गया था, लेकिन गाँव नहीं जीता । गाँव-गाँव के लोग आकर नवमणी के शव को प्रणाम करके जाते हैं, लेकिन बेटा माँ की खबर पहुंचने पर भी नहीं आता है। वह माँ के विरोध में रहता है ।

नवमणी ने कुछ दिन पहले ही मार्कापुरम में स्थापित किये अखिल पक्ष समिति में भाग लिया था। बेटे के विरोध में भाषण देने से समिति के सारे लोग आश्चर्य चकित हो गये थे । भाषण में गोट्टीपड़िया गाँव के बारे में बताती है। दस साल तक वर्षा न होने के कारण अकाल पड़ गया था। भूख की वजह से लोग पक्षियों की तरह मर रहे थे। जमीकंद, महुए के पत्ते खाकर दिन बिता रहे थे। नवमणी का ससुराल मादिगा (चमार) जाति का था। इनके ससुराल वालो की दस एकड़ जमीन थी। वे इसके मालिक कहलाते थे । मादिगा और ग्वाल दोनों जातियों में वाद-विवाद से बात मार-पीट तक पहुंच जाती है । सभी पुरुषों को जेल में डाल दिया जाता है । उस समय नवमणी के पति क्षय बीमारी से गुजर गये थे । तब नवमणी अपने दस महीनें के बच्चे को लेकर चेंचु गूडेम में अपने प्राण बचाने के लिए आती है। ये लोग उसका साथ देते हैं । तब हिम्मत से अपने पैरों पर खड़े होकर अपने संसार को आगे बढ़ाती है । बेटा अलल सुन्दरम पैसों के लालच में राजनीति में शोषणकर्ता बनकर माँ को गाँव छोड़ कर शहर में रहने के लिए तंग करता था। यही भाषण सुनकर लोग हैरान होते हैं और उनके धैर्य को जानकर अखिलपक्ष समिति के गौरव अध्यक्ष पद पर खड़ा किये थे।

माँ के अंतिम संस्कार में अलल सुन्दरम के न आने से उनके रिश्तेदार प्रेम सुन्दरम से दहन संस्कार का कार्य करवाने का निर्णय लेते हैं। राजनीति, आन्दोलन के बारे में कुछ भी नहीं जानने वाला अज्ञानी अलल सुन्दरम अब बहुत बड़ा राजनैतिक शोषणकर्ता बन गया है। अपना एक वर्चस्व बना लेता है।

नवमणी मरते दम तक गाँव वालों के लिए काम करती है। वह एक धैर्यशाली कार्यकर्ता थी। वीरा को नवमणी का जीवन अद्‌भुत, साहसपूर्ण और आदर्शमयी लगता है। वीरा नवमणी के अंतिम संस्कार के बाद वहाँ से चेंचु गूडेम की तरफ जाता है। वहाँ वीरा को एक पेड़ के नीचे अधेड़ उम्र वाला व्यक्ति, शरीर पर सिर्फ़ एक लंगोटी, जिसका शरीर केवल हड्डीयों का ढांचा है, साथ में पाँच-छ; शराब की बोतल, पाँव के घाव से बहता खून, पेड़ के नीचे जीवन बिताते दिखाई देता है, वही पेदा(बड़ा) मंतय्या है। वीरा को देख कर पेदा मंतय्या को गुस्सा आता है लेकिन वीरा अपनी बचपन की यादे उनको बताते हुए कहता है कि, 'मैं माँ के लिए आया हूँ' और वेलिगोंडा बाँध परियोजना के कारण चेंचु गूडेम में आने वाले संकट को दूर करने के लिए उनको मनाने के लिए, वहाँ से उनको विस्थापन की कोशिश करने के लिए आया हूँ। उसकी यह बातें सुनकर पेदा मंतय्या को आश्चर्य होता है। जंगल में पानी आना उनको आश्चर्य लगता है।

वीरा उनमें विश्वास दिलाने के लिए वेलिगोंडा बाँध परियोजना के बारे में और मुख्यमंत्री के बारे में बताता है, लेकिन पेदा मंतय्या उन बातों पर 'मुख्यमंत्री कौन'? ऐसे प्रश्न करता है। वीरा फिर समझाता है कि, राष्ट्र का राजा, पिता की तरह हमारी देख-भाल करने वाला। पेदा मंतय्या उसकी बातों को देर तक सुन कर उससे कहता है कि, "भूख से मरे जा रहें, चेंचु लोगों को खेती नहीं, व्यवसाय नहीं, अनाज तक नहीं है, हमारे लिए कोई मुख्यमंत्री नहीं है, हमारा देश नहीं है, हमारे लिए कोई नहीं है।"[15] वीरा उस व्यक्ति में विश्वास जगाने की कोशिश करता है। उनके साथ चेंचु गूडेम में चलता है, अपनी माँ की तस्वीर ढूंढता है। थोड़ी दूर चलने के बाद

[15] आकुपच्चनि देशम्, पृ. 43

झोंपड़ियाँ दिखाई देती हैं, जहाँ उसे दो बूढ़े लोग, चार-पाँच छोटे बच्चे, दो महिलाएं दिखती हैं। उनकी झोपड़ियों में न चूल्हा जलता है न भोजन की सामग्री है। उन लोगों में नये व्यक्ति को देखने की इच्छा भी नही हैं। दस साल की लड़की के हाथो में से शराब की बोतल लेकर पेदा मंतय्या को देता है। ये व्यक्ति एक ही क्षण में बोतल खत्म कर देता है, उसे पीने के बाद उस व्यक्ति के शरीर में ताकत उभर आती है, वीरा को उस परिवेश को देख कर दुःख होता है। माँ की तस्वीर के लिए पेदा मंतय्या के साथ पूरे चेंचु गूडेम घूमता है। वहाँ के छोटे बच्चों के साथ बचपन का खेल झींगुर खेलता है।

पेदा मंतय्या चेंचु जीवन गाथा और अपनी जीवन के प्रसंगों को बताता है, पेदा मंतय्या वीरा के लिए राज दूत-सा बन जाता है। यही वीरा की पहली जीत होती है। वीरा जंगल में पेदा मंतय्या के बराबर नहीं चल पाता है। बीच-बीच में आराम लेते हुए चलता है, तब उसको लगता है कि "पेदा मंतय्या को देखने के बाद भोजन का अवसर मुख्य नहीं होगा, एक इन्सान के जीवित रहने के लिए।"[16] पर वे लोग शक्ति-शाली होते हैं। एक झोपड़ी में वृद्ध अंधे पेदा गुरय्या और उनकी पोती पोतम्मा ही उनकी देख-भाल करती हैं। पेदा मंतय्या वीरा को गुरय्या से परिचय करवाता है, और परियोजना के बारे में बताने पर गुरय्या कहता है "बहुत लोग ऐसे ही आए थे, ऐसे ही बोलकर धोखा देकर चले गये।"[17] पोतम्मा जमीकंद को भूनने में मग्न रहती है। वीरा उस लड़की को देख कर बचपन में खो जाता है, जहाँ वह कंदील बनाने में उतना ही मग्न रहता था।

वीरा के आने पर पेदा मंतय्या उसकी माँ को खबर पहुँचाता है। वह मंतय्या के घर के सामने सोये हुए वीरा के पास आती है। वह अपने लड़के को पूरी तरह नहीं पहचान सकती। माँ को आश्चर्य से देख-ते हुए गले लगा लेता है। यही स्त्री चिना लच्चक्का है, जो बीस साल पहले चामंति फूल की तरह विकसित रहने वाली, अब येम्निशीया (मन्द बुद्दी), क्षय बिमारियों से मरणासन्न तक पहुंच गई है। कुछ दिनों तक भूखी रही थी। शराब पीने पर एक दम दृढ़ हो

[16] वहीं, पृ. 50

[17] वहीं, पृ. 52

जाती है । अपने जीवन की घटनाओं को याद कर के जोर-जोर से रोने लगती है । पेदा मंतय्या, गुरय्या वीरा उनकी माँ से मिलने पर वह त्यौहार मनाते हैं । शराब पीतें है, डफ़ली बजाते, कोलाहल होता है । वीरा माँ के दुर्भाग्यमय जीवन को देखकर दुखी होता है । माँ का ही नहीं बल्कि, चेंचु गूडेम के लोगों का भी जीवन दुर्भाग्य से भरा हुआ है । वीरा आज की राजनीतिक व्यवस्था, प्रशासन के बारे में उन पर हो रहे शोषण के बारे में बताता है जंगल इस समय में ठीक नहीं है । पुलिस कुम्बिंग, फारेस्ट आधिकारियों के आकांक्षाएं ऐसे समय में जीवन बिताना बहुत कठिन है । चेंचु जाति को जीवित रहना है तो नागरिकों से मिलना होगा । वह उनको मनाने के लिए एक उदाहरण भी देता है । दोर्नाला, श्रीशैलम के पास के चेंचु लोग पढ़-लिखकर छोटे-मोटे काम कर रहे है, लेकिन चेंचु जाति का सदियों से जंगल से गहरा रिश्ता रहा है और उसी तरह वह अपना जीवन बिता रहे हैं ।

चेंचु गूडेम में वीरा के सामने भूख और क्षय(टी.बी) बिमारी के कारण अंकय्या की मृत्यु हो जाती है। वीरा की माँ बीमार थी बिना खाए सोई हुई थी, तब वीरा को लगता है, बिना भोजन के दिन ब दिन जीवन बिताने वाली जाति यही होगी। वह डॉक्टर को गूडेम (गाँव) में बुलाने से मना कर देता है । एक दिन अलल सुन्दरम डॉक्टर के साथ गूडेम पूरा घूमता है, साथ ही पत्रकार, मीडिया वाले भी आते हैं। अलल सुन्दरम पहले एन.जी.ओ के बारे में कुछ नहीं जानने वाला, अब दूसरे एन.जी.ओ वाले घर बनाने के नाम पर इस व्यक्ति को पाँच लाख रूपये मुनाफा देकर जाते हैं ।

चेंचु लोग बीमारी से डरते नहीं है । न दवाईयाँ लेते हैं । वीरा इन लोगों को समझाने पर हैरान होता है । उसके समझाने पर गूडेम छोड़ने का निर्णय लेते हैं लेकिन कही जनवास या नागरिक दुनिया में नहीं, बल्कि जंगल में ही और अंदर जाने का निर्णय लेते हैं । वीरा को उसी समय मोहिनी का फोन आता है ‘you are a stupid’ कह कर वह उस पर गुस्सा करती है । पूरी बातें समझाने पर कुछ सुनती नहीं है और कहती है, “मुझे चेंचु गूडेम पर कुछ भी कृपा नहीं

करनी है, ये उनके भलाई के लिए नहीं, हमारी नौकरी है, उनको मार्कापुरम भेजना होगा उनके लिए वही ठीक है, नहीं तो जंगल ही उनके लिए कब्र हो जाएगा।"[18] वीरा मोहिनी की बातों को सुनकर दुःखी हो कर तुरंत जमीन के पत्र, चेक बुक वापस पोस्ट द्वारा भेज देता है ।

चेंचु लोग पूर्णिमा के दिन अपना गूडेम (गाँव) छोड़ कर सारी सामाग्री साथ लेकर जंगल में जाते हैं । उनके साथ तीन-चार बकरी और दो कुत्ते भी रहते हैं । तब वीरा सोचता है कि "एक जाति का अपने निवास स्थान को छोड़कर दूसरे निवास स्थान के लिए ढूंढते जाना यह पीड़ा, शोषण, आत्मा दरार से कुछ कम नहीं।"[19] उसी समय वीरा गाड़ी की आवाज़ सुनकर उस ओर चलता है जहाँ अलल सुन्दरम के साथ रेविन्यु अधिकारी आये होते हैं । वीरा पर एकाएक गोलियां चलाने से वह जमीन पर गिर जाता है। 'क्या रे, सरकार कुछ नहीं है? समझे, कह कर चिल्लाता है। वीरा के शरीर से खून बहने लगा, सभी लोग भयभीत होते हैं । वीरा होश में आकर उन लोगों को धैर्य देता है आदिवासियों के जंगल, पहाड़ उनके बिना और कौन लेंगे । वीरा ओंगोल कलेक्टर से मिलने पर कहता है कि, चेंचुओं का जंगल पर पूरा अधिकार है । वह आर.डी.ओ.से समिति बैठाने का फैसला लेता है। वीरा मीडिया के सामने मोहिनी से लेकर अलल सुन्दरम तक की कहानी बहिर्गत करता है। उसी समय मोहिनी से भेजा गया उत्तर आता है । उसमें वह वीरा को याद करती हुई उसकी माँ की खबर भी पूछती है। अभी वह चाहती है कि चेंचु आदिवासी लोग अपनी इच्छानुसार जहाँ रहना चाहते हैं रहें। आज के समय में एन.जी.ओ, संस्थाएं राजनीति को ही छीन रही है । मोहिनी वीरा के साथ चेंचु गूडेम में जीवन बिताने की इच्छा प्रकट करती है ।

अलल सुंदरम को पैसों के लालच ने राजनीति में रहते हुए शोषक वृत्ति का मनुष्य बना दिया है । जिसके कारण पूरे पार्टी के नेताओं को अपने नियन्त्रण में लेता है, उसका कहना है कि

[18] आकुपच्चनि देशम्, पृ.70

[19] वहीं, पृ.71

चेंचु गूडेम के बारे में मेरे से ज्यादा किसको पता है । मेरी माँ ने उन लोगों को प्राण-दान दिया है । धोखा देने वाले कौन? सरकार के द्वारा किये जाने वाला काम कृपा से एन.जी.ओ संस्थाएं कर रही हैं । मेरे सामने किसी को निर्णय लेने का अधिकार नहीं है कह कर चिल्लाता है ।

वीरा और पेदा मंतय्या आर.डी.ओ कार्यालय के सामने आन्दोलन और भूख-हड़ताल करने लगते हैं । एक तरफ अलल सुन्दरम इनको जंगल से विस्थापित करने का बड़ा षडयंत्र रचता है और उनके विरोध में सर्वशक्ति अपनाने का निर्णय लेता है । चेंचु लोग उनके नये स्थान पर पहुंचते हैं। वहाँ उनके लिए झोपड़ियां बनाने में पूरे लोग लग जाते हैं। दुनिया में अत्यंत कठिन परिस्थितियों में जीवन बिता रही चेंचु जाति को उनके जीवन लक्ष्य भी पता नहीं हैं । सबकी झोंपड़ियां बाँधने के बाद वीरा इनके लिए भोजन का इंतजाम करता है । सभी शराब पीते हैं, गाते-नाचते, कोलाहल मचाते हैं। उसी समय वीरा और पेदा मंतय्या वहाँ से निकल कर अस्पताल जाते है। घाव से भरे हुए वीरा के शरीर को डॉक्टर ग्राफ्टिंग करते हैं। मोहीनी को वीरा की खबर पहुंचाने पर वह अस्पताल आती है, लेकिन वीरा की उस हालत को नहीं देख पाती ।

अलल सुंदरम चेंचु लोगों के नये झोपड़ियों को भी नहीं सहन कर पाता है। उन झोंपड़ियों को आग लगा कर कदम-कदम पर चेंचुओं के मरण देखना चाहता है। वह उनका पीछा कर उन पर गोलियाँ चलाकर जंगल से बाहर भगा देता है । खुद ब खुद अदृश्य होने की झूटी खबर पत्रिकाओं में देता है । उस पर कहता है, जंगल में नक्सलियों से युद्ध शुरू होने के कारण उनको सुरक्षा के लिए बाहर निकाल दिया है । एन.जी.ओ संस्था उनके लिए घर बनाकर देने के लिए आये हैं । इस तरह पत्रिका में समाचार देता है लेकिन चेंचु लोगों के ऊपर लाख हत्यारी, गोलियाँ चलने पर भी वे जंगल में ही रहने का दृढ़ निश्चय करते हैं ।

अस्पताल में वीरा को समाचार मिलता है कि पुलिस चेंचुओं पर खून बरसा रही है । समाचार मिलते ही वीरा और पेदा मंतय्या वहाँ से निकल जाते हैं । पुलिस स्टेशन के आगे चेंचु

लोग चिना(छोटा) गुरय्या का शव लेकर हड़ताल पर बैठ जाते हैं। वे तेज बारिश में भीगते हुए किसी से बात भी नहीं करते हैं और सर झुकाए बैठे रहते हैं। वीरा के लाख प्रयत्न करने पर भी वह मुहँ नहीं खोलते हैं। उसी समय एक व्यक्ति पुलिस से कहता है कि सर मेरा नाम भिमुडू है। ये लोग बहुत डर गये हैं। दस दिनों से इनका पीछा करते हुए भगा रहे हैं। ये जंगल, गूडेम के बिना और कुछ नहीं जानते हैं। थोड़ी देर के बाद आर.डी.ओ अधिकारी आकर भाषण देता है। वह कहता है कि तुम लोग जंगल में रहने से मना करने पर भी, उसी तरफ जाने का निर्णय लेते हो क्यों? तुम्हारे लिए मार्कापुरम के पास वैकल्पिक निवास स्थान दिया गया है क्यों नहीं वहाँ चले जाते? जंगल के चारों तरफ घूमते रहते हो। बारिश और तेज होती है। वहाँ के पूरे लोग अंदर चले जाते हैं, लेकिन ये चेंचु लोग नहीं उठते वही बैठे रहते हैं। अलल सुंदरम उनके लिए भोजन का पैकेट लेकर आता है, परन्तु उसे लेने के लिए कोई तैयार नहीं होता। शव को लेकर अंतिम संस्कार के लिए जंगल की तरफ जाते हैं। दफनाने के बाद ये सभी एक-एक पेड़ के नीचे बेहोश की तरह पड़ जाते हैं।

वीरा इन परिस्थितियों से दुखित होते हुए पेदा मंतय्या से कहता है बीस सालों में कोई भी जाति इतना दुःख सहन नहीं कर पाई होगी। चेंचुओं की तरह अपमान सहने वाली, घायल होने वाली और कोई जाति नहीं है। पेदा मंतय्या बेहोशी में ही रहता है। वीरा ग्लूकोज का पानी लाकर सामने रखता है। जिसे वे शराब मान कर पीते हैं और नींद में चले जाते हैं। वीरा वहाँ से निकल कर जंगल के बाहर सड़क पर आता है। जहाँ उसे दो गाड़ियां दिखाई देती हैं, एक पुलिस की दूसरी अलल सुन्दरम जो चेंचुओं के लिए भोजन लाया था और वह मीडिया के समक्ष उन में बांटने के लिए खड़ा था। वहाँ से थोड़ा आगे चलने के बाद विजयवाड़ा और कर्नूल की तरफ जाने वाला जंक्शन आता है। वहाँ चेकपोस्ट कार्यालय, फारेस्ट कार्यालय है। उसी से सटे हुए होटल में वीरा को पुलिस और कुछ लोग शराब पीते गाते-नाचते दिखाई देते हैं। सामने के एक बड़े पत्थर पर एक वृद्ध व्यक्ति फटे मैले भरे कपड़ों में दिखता है। वे अपने खोये हुए परिवार की कहानी, देवी-देवता की कहानी को गीतों में गाँव-गाँव घूम कर बताता रहता है और चेंचुओं

की व्यथा कथा भी बताता है । तब ये गाने सुनकर वीरा का शरीर भय से कांपने लगता है, तुरंत वहाँ से वह चेंचुओं के पास पहुंचता है । सभी पेड़ों के नीचे सोये हुए हैं । वीरा को भी नींद आती है । वीरा कुछ ही देर में उठ कर देखता है कि चेंचु लोग वहाँ नहीं हैं। उनको ढूंढने के लिए वीरा एक नक्शा तैयार करके पेदा मंतय्या को दिखाता है। बाएँ ओर चलने से गूडेमचरला, कलानुतला, सुन्केसुला, गोट्टीपड़िया गाँव आयेंगे दायीं ओर चलने से चिलकचरला, काट्मराजु दिब्बा गाँव आयेगें। दोनों दायीं ओर चलते हैं । उनके पैरों के निशान को देखते हुए जंगल, पहाड़ को पार करते हुए चलते रास्ते में ग्वाल से पूछने पर काट्मराजु दिब्बा की तरफ निकलते हैं । एक पेड़ के नीचे सोती हुई महिला दिखती है । पेदा मंतय्या उसे अन्कालम्मा कहकर आवाज देता है । वह बाकी के लोगों के बारे में पूछने पर पहाड़ों की तरफ इशारा करती है । वीरा द्वारा उसे ग्लूकोज का पानी देने पर वह होश में आती है । भूख लगने पर चार कुकुरमुत्ता खाने पर जो विषपूरित थे । अन्कालम्मा जो जंगल से जड़ी-बूटी लाकर छोटी-छोटी बीमारियों के इलाज के लिए दवाइंया बनाती थी। वीरा और पेदा मंतय्या वहाँ से ऊँचे पहाड़ों के नीचे गुफाओं में काट्मराजु की प्रतिमा के पास पहुंचते हैं जिसने गो सम्पत्ति से भरे एक महान वीर, नेल्लूर सीमा को भय-भीत करने वाला, खडगा तिक्कन्ना को हराया था । जिसने जनता के लिए प्राण त्याग किये थे उस महान व्यक्ति की प्रतिमा के अगल-बगल में चेंचु लोग बैठे हैं । इसी समय रेवेन्यु अधिकारी नर्स को लेकर आते हैं । उनको देखकर चेंचु लोग डरने लगते हैं । लाख प्रयत्न करने पर भी एक व्यक्ति के शरीर में सेलाइन लगा नहीं पाते हैं । वे स्तब्ध मूर्ति की तरह बैठ जाते हैं । पेदा मंतय्या शराब लेकर आता है । जिसे सभी लोग पानी की तरह पीते हैं । कुछ महिलाएं एक दम रोने लगती हैं और अपनी पुरानी यादों में खो जाती हैं, तो कुछ महिलाएं अपना आक्रोश व्यक्त करती हैं ।

अलल सुंदरम आज के राजनेताओं के लिए आदर्श है। वह दया, करुणा जैसे न जाने कितने ही मुखौटे बदल सकता है। गाँधी मुखौटा पहन कर काट्मराजु दिब्बा में प्रत्यक्ष हुआ। उसके साथ पत्रकार, डॉक्टर भी थे। चेंचु लोगों का दुःख-दर्द तथा मरण अलल सुन्दरम के लिए व्यापार है।

दूसरे दिन गाने-बाजे, डफली-ढोल लेकर काट्मराजु दिब्बा की तरफ मन्दिर में आता है । रेशम की साड़ियाँ, हल्दी, कुंकुम के साथ मशाल जलाकर प्रतिष्ठित करता है। इतना करने पर भी चेंचुओं पर कोई असर नहीं पड़ता है। वे वहाँ से पहाड़ों की तरफ निकल जाते हैं । उनके साथ वीरा और मंतय्या भी जाते है ।

मोहिनी वीरा को ढूंढती हुई काट्मराजु दिब्बा पहुंच कर एक होटल में उसका इन्तजार करती है। उसी समय वीरा वहाँ पहुंचता है। मोहिनी वीरा को देखकर हैरान हो जाती है, क्योंकि वीरा का शरीर अब चलने वाला घाव है । चेंचु पूरे बेहोशी की हालत में हैं । जीने-मरने की कोई लालसा उनमे नहीं हैं । फिर से जंगल में जाना उनकी दृढ़ इच्छा है ।

वीरा को खबर मिलती है कि मार्कापुरम के दक्षिणी क्षेत्र के जंगलो में आग लग गई है । वीरा मोहिनी को छोड़ कर एक दम दौड़ते हुए जाता है। उसी तरफ पहाड़ों के नीचे चेंचु लोग बैठे हुए थे । आग के फ़ैलने से साँप गर्मी से बाहर आने लगते हैं। इन लोगों को इस बातों का डर ही नहीं है । पेदा मंतय्या बाहर निकले साँपों को मारने में लगा है । उस समय बाहर भागते हुए चेंचु लोगों के पैरों को लाशों की खोपड़ियां लगती है। उन खोपड़ियों को फिर से गाढ़ने के लिए जमीन खोदते समय उस में बंदूक की गोलियाँ, ग्रेनेड दिखते हैं । उसे देखकर उडूमुला लच्चक्का चिल्लाने लगती है, पेदा गुरय्या गाने लगता ह । अपने दुःख-दर्द, पीड़ा को गाने में व्यक्त करते हुए गाते-गाते वह जमीन पर गिर पड़ता है। किसी को समझ में नहीं आ रहा था कि वो मर चुका है या नहीं । इस दुर्भाग्यमय स्थिति को देखकर वीरा रोने लगता है ।

एक दिन मानवाधिकार आयोग वाले चेंचु गूडेम आते हैं । वहाँ की परिस्थिति को देख कर क्रोध प्रकट करते हैं । चेंचुओं की झोंपड़ियों, जंगल में बहता खून, उनकी लाशों को देखकर उनके पुनर्वास का आदेश देते हैं । तदुपरांत अलल सुन्दरम यही मौका समझकर अपने स्वार्थ के लिए उनको पुलिस के सहारे गाड़ी में पुनर्वास के लिए पहुंचाया जाता है । वह स्थान एक ओपन जेल की तरह था । चेंचु लोगों का भय दूर करना, उनको भोजन करवाना । अलल सुंदरम इसलिए

यह सब करता है कि कल गृहमंत्री के सामने कुछ दिखा सके। वीरा अन्दर जाकर उन लोगों की दयनीय स्थिति को देखकर हताश हो जाता है। पेदा मंतय्या क्रोध में वीरा को देखने लगता है। वीरा मन में ही सोचता है कि ये चेंचु लोग साधारण स्थिति से तो डरते हैं लेकिन जिद्दीपन कैसे आया इन लोगों में गंभीर, दृढ़ निर्णय पर टिके रहने की क्षमता कहाँ से आयी। यहाँ तो अब युध्दपूर्ण वातावरण है। पेदा मंतय्या यहाँ से बाहर निकलने का निर्णय लेता है। वीरा के साथ बाहर निकलकर दीवार पर लगी हुई कांस्टेबल की बन्दूक हाथ में लेता है जिससे पुलिस घबरा जाती हैं। पेदा मंतय्या चिल्लाते हुए बायनेट को अपने शरीर में घुसा लेता है। वहां की जमीन पूरी खून से लथपथ हो जाती है। चेंचु लोग और वीरा जोर से रोने लगते हैं। इन पूरी समस्याओं का कारण राजनैतिक व्यापार है जिसमें चेंचु लोगों का खून चूसने वाला अलल सुन्दरम जैसे राजनेता है।

समूह में से वृध्द स्त्री बाहर आकर अपना दुःख प्रकट करती है समूह में से पंद्रह साल का लड़का पेदा मंतय्या की लाश को लेकर सड़क पर दौड़ता है। उनके पीछे चेंचु लोग भी दौड़ते हैं। अलल सुंदरम पुलिस को रोक देता है। वीरा सोचता हैं कि चेंचु लोगों को मरण प्राप्ति के बिना पर्याय नहीं है। मार्कापुरम गाँव के किनारे खेतों में चेंचु लोग बैठ जाते हैं।

चेंचु के लिए चेंचु संरक्षण समिति में एम.एल.ए और कार्यकर्ता सभी उपस्थित होने से अलल सुन्दरम श्रीशैलम के रहने वाला चेंचु व्यक्ति उडूमुला बैय्यन्ना को समाचार भेजने पर आता है। वह गेट के सामने बैठे हुए वीरा से बात करने पर कहता है कि सभी अधिकारी मेरे पास आते थे। दस साल पहले हम शास्त्री के नेतृत्व में जंगल से बाहर आए थे। चालीस साल के पहले मार्कापुरम में श्रीशैलम मंदिर के लिए आन्दोलन हुआ था जिसमें मलय्या की पूजा चेंचु आदिवासी को ही करना है यह मांग रखी गई थी। तब अधिकारी पूरे थरथर कांपते थे। आज चेंचु लोग पक्षियों की तरह मर जा रहे हैं ऐसा कहकर रोने लगा।

सभा शुरू हो गई थी। सभा में सभी नेता अधिकारी आए हैं । कांग्रेस पार्टी के नेता सोनिया गांधी, राजीव गाँधी के मुखौटे पहनकर आए हैं । तेलुगु देशम पार्टी के नेता पीली रंग वाली कमीज से चन्द्रबाबु और एन.टी.रामाराव की तरह आते हैं। मंच पर खड़े हुए एक कार्यकर्ता चेंचुओं की जीवन स्थिति के बारे में भाषण देता है। सभी नेता मंच पर अपना भाषण देकर चले जाते हैं। अलल सुन्दरम जार्जबुश के रूप में आकर भाषण देता है "जमाना बदल गया है । इंसान धन-दौलत के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार हो रहा है । सभा को प्रारंभ हुए दो घंटे हो गए। सौ साल के इतिहास से संबंधित चेहरे रहने पर भी कोई परिष्कार नहीं मिला। आदर्श का जमाना चला गया है। चेंचुओं को जंगल छोड़कर बाहर आने के लिए मनाओ। उनको जंगल से बाहर लाने के लिए कोशिश करने वालों को एक लाख रूपया मुनाफ़ा मिलेगा।"[20] इस तरह सभा को समाप्त कर दिया जाता है।

गाँव के बाहर बैठे हुए चेंचुओं की ओर एक व्यक्ति लंगोटी के बिना नग्न अवस्था में हाथ में कुल्हाड़ी, सर पर टोकरी लेकर आता है। उन से परिचय करते हुए बताता है वह श्रीशैलम मन्दिर में पूजा करता था। उडूमुला बैय्यना चेंचुओं की इतिहास को जानने वाला, अब तक की कहानियों को गानों में सुनाने वाला, चेंचुओं के देवी-देवता और उनकी पूजा जाननेवाला। हमारा भगवान वीरभद्रस्वामी सबसे भयंकर है। वह प्रकृति को बदल भी देता है और प्राण लेता और देता भी है। कहीं-भी कभी-भी आ सकता है । वह बांसुरी निकाल कर गाने लगता है । तदुपरांत आँखे बंध करके टोकरी में से काली मिर्च निकाल कर वृध्द व्यक्ति दासरी चिना मंतय्या के हाथों में देते हुए कहता है "जमीन में गाड़ देना वहाँ सब भला होगा, सीधे पश्चिम की ओर छ; कोस चलने के बाद जंगल आयेगा, कोई भी आवाज देने पर पीछे मुडकर मत देखना वहाँ काली मिर्च गाड़ना, वहीं पर झोपड़ियां बना लो यही वीरभद्रस्वामी का मत है।"[21] वीरा को यह पूरी बात मन्त्र की तरह लगती है। बय्यना टोकरी में से शराब निकाल कर कहता है भगवान का प्रसाद है,

[20] आकुपच्चनि देशम्, पृ. 137

[21] वहीं, पृ.141

पेट भर कर पीओ । वह वीरा की तरफ देखते है उसके देखने पर वीरा पीना शुरू कर देता है। तब वीरा को बय्यना में भगवान दिखता है पर वह नहीं कह पाता अब चेंचु जाति में मरण नहीं है। सीधे पश्चिम की ओर जाओ वहीँ चेंचु का राज्य है। धान्य उत्पादन, व्यवसाय रहेगा और अद्‌भुत महिमायें देखोगे। यह कहकर बय्यन्ना अपनी टोकरी सिर पर उलटी रखकर चलता है जिससे से फूल जमीन पर गिराने लगते है । वीरा चिना मंतय्या के पास से थोड़ी काली मिर्च लेकर जेब में डाल लेता है।

लेखक इस उपन्यास का अंत काली मिर्च से करता है । क्योंकि चेंचुओं के कुलदेव के नाम लेकर एक व्यक्ति बय्यन्ना उनके पास आता है और उनके हाथों में काली मिर्च देकर कहता कि चेंचु जाति में मरण नहीं है सब भला होगा इस तरह अंत होता है । चेंचुओं में हिम्मत लाने तथा उनमें चेतना जगाने के लिए काली मिर्च आन्दोलन का संकेत है ।

लेखक ने इस उपन्यास में चेंचुओं की जीवन स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है । इन लोगों के जीवन की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति को इस उपन्यास में दिखाया गया है । अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहे आदिवासियों को राजनेता तथा अधिकारी किस तरह दबाये जा रहे हैं तथा विकास के नाम पर इन आदिवासियों को अपनी जमीन और जंगलों से किस तरह बेदखल किया जा रहा है? स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । चेंचु आदिवासियों की तरह और कोई जाति इतना दुःख-दर्द, पीड़ा सहन नहीं कर पाई होगी । अपमान सहने वाली, घायल होने वाली यही है । इस 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में पूरा हरे पत्तों पर छिड़का हुआ चेंचु आदिवासियों का खून कदम-कदम पर दिखाई देता है ।

निष्कर्ष

'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास की कथावस्तु के अंतर्गत उपन्यास के संवेदनात्मक पक्ष को उजागर करने का प्रयत्न किया गया है । दोनों उपन्यासों की कथावस्तु अत्यंत प्रभावकारी है । यह पाठक के समक्ष उपन्यास में चित्रित स्थितियों को वास्तविकता के धरातल पर लाने में सफल भी रहा है । 'गायब होता देश' उपन्यास की कथावस्तु उपन्यास के नायक किशन विद्रोही और मुंडा जाति के उत्पीड़न-शोषण के इर्द-गिर्द घुमती है तो 'आकुपच्चनि देशम्' की कथावस्तु चेंचु जाति एवं उपन्यास के नायक वीरा और विस्थापन के विरुद्ध किए जा रहे आंदोलन के इर्द-गिर्द घुमती नजर आती है । दोनों उपन्यासों की कथावस्तु पाठकों के समक्ष मुंडा एवं चेंचु जाति के बीच के साम्य-वैषम्य का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करती है । दोनों उपन्यासों की समस्याएं व परिवेश भिन्न होने के बावजूद संवेदना के स्तर पर 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास का कथ्य पाठकों को 'गायब होता देश' की अपेक्षा अधिक झकझोर कर देता है ।

तृतीय अध्याय

'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ

'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' प्रसिध्द आदिवासी उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में आदिवासी जीवन की समस्याएँ बहुआयामी तथा बहुरंगी हैं। एक ओर यह समस्याएँ जनसांख्यिकी से लेकर राष्ट्रीय एकता तक की हैं तो दूसरी ओर आदिवासियों की प्रतिक्रियाएँ इन समस्याओं को लेकर भिन्न-भिन्न हैं। यह भिन्नता उस समय और भी विकट हो जाती है जब हम पाते हैं कि एक ओर तो भारत में भील, गोंड़, मुंडा, संथाल जैसी बड़ी जनसंख्या वाली जनजातियाँ हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ ऐसी जनजातियाँ हैं जिनकी जनसंख्या हज़ार से भी कम हैं। विभिन्नता के इस मुद्दे को सांस्कृतिक स्तर पर देखा तथा परखा जा सकता है।

आदिवासियों की समस्याओं का स्त्रोत बाह्य जगत के सम्पर्क में छिपा है। जब तक आदिवासियों का सम्पर्क बाह्य जगत से नहीं हुआ था। अर्थात जब वे एकाकी निवास करते थे और अपनी साम्य व्ययस्था के अंतर्गत जीवन यापन करते थे तब तक उनको किसी भी प्रकार की समस्याएँ नहीं थी इनकी समस्याएँ तब शुरू हुईं जब बाहरी लोगों का आदिवासी क्षेत्रों में आना-जाना प्रारंभ हुआ। आदिवासियों के इस दावे के बावजूद कि वे भारत के 'मूल निवासी' अर्थात् 'धरती पुत्र' है उन्हें अपने निवास क्षेत्र से विस्थापित कर दिया जा रहा है।

हेमंडार्फ यह मानते हैं कि "सम्पर्क स्थिति से उत्पन्न जनजातीय समस्याएँ ऐतिहासिक नहीं हैं अर्थात् सम्पूर्ण ऐतिहासिक काल में इस प्रकार की स्थिति नहीं थी। मुस्लिम शासन के दौरान शासक जनजातिय समाज को परिवर्तित करने के पक्षपाती थे परन्तु उनकी नीति अहस्तक्षेप की थी तथा जनजातिय समाज के लिए उनके मन में आदर था। राजस्व अधिकारी कर वसूलने के लिए जनजातिय गाँवों का दौरा करते थे और इस प्रकार जनजातिय समाज का

सम्पर्क बाह्य जगत से था परन्तु बिहाड़ जंगलों तथा पहाड़ों में स्थित जनजातिय जनसंख्या बाह्य जगत के सम्पर्क से अछूत थी।"[1]

अंग्रेजों के आगमन के साथ-साथ देश का अकादमिक तथा गैर-अकादमिक शोषण प्रारंभ हो गया। देश के वृहत अगम्य क्षेत्रों की खोज साहसिक यात्रा करने वालों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा की गई। इसके पश्चात अंग्रेजों का लक्ष्य देश को बाहरी लोगों के लिए खोलना था ताकि देश के प्राकृतिक संसाधनों का वृहत पर दोहन किया जा सके । इसके अंतर्गत देश में रेल मार्ग बिछाए गए तथा यातायात के अन्य साधनों की स्थापना की गई जिससे देश को एक सूत्र के रूप में जोड़ा गया । अंग्रेजों की इस नीति के कारण आदिवासी क्षेत्रों में बाहरी लोगों की आवाजाही बढ़ गई । ऐसे लोगों को स्थानीय प्रशासन का संरक्षण प्राप्त था । इस कारण आदिवासी क्षेत्रों का समीकरण बिगड़ गया ।

आदिवासी अपनी संपत्ति जल, जंगल, जमीन पर ही निर्भर रहे हैं । आज इनकी इस बहुमूल्य संपत्ति को ही इनसे छीन लिया जा रहा है । पहले अंग्रेजों ने जंगलों को व्यापार निमित उनके खनिज पदार्थों को हस्तगत कर लिया था तदुपरांत स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय सरकार ने जंगलों में आदिवासियों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा कर उसको अपने अधीन कर लिया । परिणामत: आदिवासियों का जीवन संकट में पड़ गया । एक समय था जब वे जंगल के राजा हुआ करते थे आज उनकी स्थिति मजदूरों से बदतर हो गयी है । इन आदिवासी जीवन के यथार्थ को रणेंद्र ने सजीव रूप में चित्रित किया है । इस उपन्यास में उपस्थित मूलभूत समस्याओं का विवरण निम्नवत् प्रस्तुत है ।

[1] भारतीय मानव शात्र, प्रफुल्ल रंजन झा, पृ. 247

3.1 'गायब होता देश' में चित्रित समस्याएँ

रणेंद्र का उपन्यास 'गायब होता देश' में झारखंड के मुंडा आदिवासियों की समस्या,पीड़ा और दुःख-दर्द को यथार्थपूर्वक चित्रित किया गया है । इसमें आदिवासियों के विस्थापन की समस्या, स्त्री समस्या, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक एवं धार्मिक तथा पर्यावरण से संबंधित समस्या प्रमुख हैं ।

उपन्यास 'मुंडा' आदिवासी समुदाय की समस्याओं से जुड़ा हुआ है । इस आदिवासी समुदाय की प्रमुख समस्या 'विस्थापन' है । उनका यह विस्थापन केवल जल, जंगल, जमीन से नहीं बल्कि उनकी सभ्यता, संस्कृति और इतिहास से विस्थापित होने से जुड़ा हुआ है । इस स्थिति में सबसे बड़ा हाथ पूंजीपति वर्ग का है तथा मीडिया, सरकार भी इनकी सहयोगी रही है । मुंडा आदिवासी समाज जो अपनी गौरवशाली संस्कृति और समृध्द इतिहास पर गर्व करता था, आज अपनी संपत्ति को सिर्फ गायब होते देख रहा है। उस अन्याय के विरुध्द कुछ कर नहीं पा रहा है। इनके निवास स्थान, जल-जंगल-जमीन सब गायब हो रहे हैं। साथ ही साथ इनकी संस्कृति भी गायब होने लगी है। इन सभी समस्याओं को रणेंद्र ने अपने उपन्यास में चित्रित किया हैं ।

3.1.1 सामाजिक समस्याएँ:

आदिवासी जीवन में सामाजिक समस्याएँ निरंतर बढ़ती जा रही हैं । जहाँ प्राचीन आदिवासी समाज एकता के सूत्र में बंधा हुआ था वहीं आज राजनैतिक दलों ने उनमें मानव विखंड की कई रेखाएँ जैसे वंशवाद, जातिवाद, नस्लवाद, वर्गवाद खींच दी हैं ।

आदिवासी समाज समानता की संकल्पना पर आधारित होता है। इस समाज में स्थायिकरण नहीं होती है। जबकि यहाँ किसी भी प्रकार की भिन्नता नहीं पाई जाती है। आदिवासी समाज रिश्तेदारी संबंधों पर आधारित होता है। यहाँ सामाजिक संबंध परस्पर

एकरूपता पर आधारित होते है। इसी सन्दर्भ में आदिवासियों की सभ्यता पर रमणिका गुप्ता का मन्तव्य है "आदिवासी सभ्यता समानता की सभ्यता हैं। यह वर्चस्ववादी सभ्यता कभी नहीं रही। आदिवासी जीवन शैली में मनुष्य और प्रकृति तथा उसके जीव-जन्तु साथ-साथ जीते हैं, साथ-साथ कष्ट झेलते हैं, हंसते-गाते हैं रोते बिसूरते हैं। इनके पहाड़ इनकी नदियाँ, हवा या आग इनके देवता हैं। अपने देवता को ये बोंगा कहते हैं। इसलिए इन्हें अपने देवता के लिए कभी किसी मंदिर और मस्जिद नहीं होती। पूरी धरती, पूरी वनस्पति या प्रकृति उनकी है, जिसकी रक्षा करना ये अपना कर्तव्य मानते हैं और इनका दृढ़ विश्वास है कि प्रकृति इन्हें पालती-पोसती है।"[2]

आदिवासी सदियों से जंगलों और पहाड़ी इलाकों में जीव-जन्तु के साथ अपना संबंध गहरा कर जीवन यापन कर रहे है । जल-जंगल-जमीन उनकी संपत्ति रही है । इसी संपत्ति के लिए उन्हें हमेशा से दबाया और कुचला जाता रहा हैं । जिससे उनकी जिन्दगी अभावग्रस्त हो गई है । इनका खुले मैदान के निवासी और तथाकथित सभ्य कहे जाने वाले लोगों से न के बराबर ही संपर्क रहा है ।

आदिवासी समाज में रहने वाले मजदूरों की पीड़ा तथा उनके दुःख को हम इनके परिवेश में देख सकते हैं । हमारे प्रशासनिक तन्त्र में पूंजीपति वर्ग तथा शासकों के गठजोड़ से आदिवासियों का शोषण हो रहा है। ये राजनीतिक तथा प्रशासनिक वर्ग के लोग उन्हें हर कदम पर झूठे अहसास दिलाते हैं, इसी सन्दर्भ में रणेंद्र उपन्यास में लिखते हैं कि "इन दुनालीधारी दिकुओं को दल्लों और उनके चरण-भाटों को यह जानकारी मिली कि यहां युनिवर्सिटी खुलनी है, कोल इंडिया और स्टील ऑथोरिटी के ऑफिस खुलने हैं, हैवी इक्यूपमेंट की फैक्टरी खुलनी है, बस आँख मूंद और डिबिया गायब का खेला तेज...जमीनें तेज़ी से गायब होने लगी । कहां तो कलक्टर साहबान को गार्जियन बनाया गया था । आदिवासी लैंड के गार्जियन । उन्हें ही तय

[2] रमणिका गुप्ता, आदिवासी अस्मिता का संकट, सामयिक प्रकाशन, 2014, पृ.86

करना था, जमीन का ट्रांस्फर ज़ायज है या नहीं । अब शहर फ़ैल रहा था, तो आशियाने तो बनने थे। आदिवासी जमीन गृह निर्माण सहकारी समितियों को ट्रांस्फर।"[3]

पूंजीपतियों ने आदिवासियों के जमीन की लूट में कलेक्टर को ही गार्जियन बना दिया है । ऐसी हालत में आदिवासी किससे अपनी जमीन का कागज़ लिखवायेंगे । सामाजिक नियमों की कठोरता के कारण एक बार जब कोई व्यक्ति किसी कारण वश खान-पान तथा विवाह संबंध के बाध्य स्तर से गिर जाता है तो उसका समाज में अपमान होता है । ऐसी स्थिति में आदिवासी समाज मुख्यधारा से विलग हाशिए का जीवन जीता आ रहा है । आज भी उनकी स्थिति दयनीय है । ऐसी हालत में आदिवासी किसी पर निर्भर न रह कर केवल उनके प्रकृति स्वरूप 'सिंगबोंगा' वह सर्व शक्ति या सृष्टिकर्ता पर निर्भर है वही उनका पालन कर्ता, और कल्याणकारी है । जिसे उपन्यासकार रणेंद्र ने इस तरह व्याख्यायित किया है "सिंगबोंगा-परमेश्वर, मुंडाओं के पितामह आजा, जिन्हें आखिरी बार लुटकम हड़म-लुटकम बूढ़ी ने देखा। जो अब अदृश्य-अंतर्ध्यान हैं और सृष्टि के कण-कण में व्याप्त हैं। वे ही पहली ऊषा में, पहले सूर्योदय में प्रकट होते हैं । उनकी शुध्दता दूध के फैन की तरह पूरी सृष्टि में प्रसार पाती है और श्वेत दही की तरह स्थिर हो जाती है । वे ही जगत के नियन्ता सिरमारेनसिंगबोंगा, मुंडा जाति के रक्षक और शुभचिंतक है । वे संकेतों-प्रतीकों से अपना संदेश भिजवाते हैं, जिनकी व्याख्या सिर्फ़ पाहन ओर देवड़ा ही कर सकते हैं।"[4]

आदिवासी सदियों से प्रकृति को ही मानते आए हैं । सभ्य समाज के लोग पूंजीपति वर्ग इन्हें सब धोखा देने वाले ही हैं । उन्हें समाज की मुख्य धारा से असभ्य, अशिष्ट, बर्बर, कह कर दूर रखा गया है । साहित्य में भी इन्हें उचित स्थान प्राप्त नहीं हुआ है ।

[3] गायब होता देश, पृ. 79

[4] गायब होता देश, पृ. 2

आदिवासी समाज अपनी स्थिति में सुधार लाने की कोशिश करता है तब पूंजीपति वर्ग द्वारा उसे नाकाम करने के कई हथकंडे अपनाए जाते हैं । ये उनके जीवन को अंधकारमय बना देते हैं तथा लड़कियों को रोजगार के बहाने बुलाकर अपनी काम वासना का शिकार बनाते है । इसी सन्दर्भ में उपन्यास की स्त्री पात्र अनुजा कहती है कि "पूरी दुनिया को लगता है कि बस जंगल में पहुंचने भर की देरी है बाकी वहाँ तो सब फ्री । हाट-बाज़ार में बाहर से आने वाले सारे मरदों की कल भी यही सोच थी, आज भी यही सोच है। तेरह-चौदह की उम्र रही होगी । हाट से लौटते वक्त ड्राइवर-खलासियों ने सुनसान डहर में घेरने की कोशिश की । मैं भागी बाकी मेरा पाँव एक लत्तर में फँस गया, गिर पडी । उन्होंने दबोच लिया । उस वक्त तक मुझे भी मालूम नहीं था । मैं भी कहानियाँ-किस्से ही सुना करती थी।"[5]

आज तो यह समस्या केवल आदिवासी स्त्रियों की ही नहीं अपितु सभ्य समाज की कही जानेवाली स्त्रियों की भी यही हालत है । हमारे समाज में तो स्त्री को जननी, धरणी, भूमाता आदि नाम से उनका सम्मान किया जाता है तथा पूजा-पाठ भी किया जाता है । लेकिन इस कर्तव्य का पालन तो भ्रष्ट हो जा रहा है । निर्मला पुतुल अपनी कविता में ऐसे लोगों से आदिवासियों को सावधान करते हुए लिखती हैं –

"वे दबे पाँव आते हैं

वे तुम्हारे नृत्य की प्रशंसा करते हैं

वे तुम्हारी आँखों की प्रशंसा में

कसीदे पढ़ते हैं

वे कौन हैं ?

[5] गायब होता देश, पृ. 268

सौदागर है वे समझो

पहाड़ों पर आग वे ही लगाते हैं

उन्हीं की दुकानों पर

तुम्हारे बच्चों का बचपन

चित्कार करता है

उन्हीं की गाड़ियों पर

तुम्हारी लड़कियाँ

सब्जबाग देखने

कलकत्ता और नेपाल के रास्ते

बाज़ार में उतरती हैं।"[6]

वर्तमान समय में आदिवासी सदियों की गुलामी, अत्याचार, उत्पीड़न तथा शोषण से मुक्त होना चाहता है । प्रकृति की पूजा करना आदिवासी संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है । आदिवासी समाज अन्य समाजों की तुलना में अत्याधिक पिछड़ा होने के कारण विकास एवं प्रगति की राह से दूर रहा है । समाज में उसकी पहचान तथा उनकी समस्याओं की भर-पूर जानकारी ले कर उनका हल करना चाहिए । आज उनकी कला एवं संस्कृति, पारम्पारिक लोक नृत्य व लोक गीतों में समाहित जीवन शैली का प्रचार-प्रसार करना चाहिए जिससे आदिवासी संस्कृति को अन्तराष्ट्रीय स्तर पर प्रोत्साहन मिले तथा अपनी संस्कृति की पहचान कायम हो सके।

[6]नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005, पृ. 15-16

3.1.2 आर्थिक समस्याएँ:

आदिवासी जीवन की समस्याओं में 'आर्थिक समस्या' प्रमुख है । विज्ञान के युग में आज भी आदिवासी समुदाय अधिकांशत: प्रकृति पर ही निर्भर होते हैं । आदिवासी सदियों से जंगल, पहाड़, घाटियों में जीवन बिताते आ रहे हैं । जंगलों तथा पहाड़ों से भोजन स्वीकारना, नदियों तथा तालाबों से मछली पकड़ना, जानवरों का शिकार करना ही इनकी वृत्ति रही है । कहीं-कहीं घाटियों तथा अन्यत्र पहाड़ी ढालों पर कृषि करना ही उनकी आजीविका के प्रमुख साधन रहे हैं । स्वभावतः आदिवासी लोग अधिक धैर्यवान और संतोषी स्वभाव के होते हैं । भविष्य के प्रति ये अधिक चिंतिति नहीं रहते हैं । पारस्पारिक दायित्वों तथा सामूहिकता की भावना से बँधे होते हैं तथा एक दूसरे से मुनाफ़ा लेने की नहीं सोचते हैं ।

आदिवासी परंपरागत संतोषी स्वभाव के होने के कारण इन्हें अधिक धन कमाने की लालसा नहीं होती है । वे अस्थायी कृषि पध्दति में सामूहिक रूप से कृषि कार्य करते हैं । दो-तीन साल तक फसल उपजाते हैं इसके बाद दूसरे स्थान पर इसी प्रणाली के अनुसार कृषि कार्य किया जाता है । इसी सन्दर्भ में उपन्यास का पात्र वीरेन कहता है कि "हमारे पूर्वजों ने हज़ारों साल पहले यहां के जंगलों को काट कर खेत बनाए । बस्तियां बसाई । क्या यही उनकी गलती थी? वे सबको इज्जत देते थे, उनके पेट छोटे थे, भूख छोटी थी क्या यह उनकी गलती थी? उन्होंने इस धरती माँ, पेड़-पौधों की इज्जत की । नदी-पझरा-झरना को प्यार किया, टुंगरी-पहाड़ को पूजा । क्या यह गलती थी? उनसे उतना ही लिया जितनी उनकी जरूरत थी । उनकी जरूरतें बहुत कम थीं और वे बहुत खुश थे।"[7]

वास्तव में आदिवासियों की जरुरतें बहुत कम होती हैं । वे किसी को नष्ट करने का काम नहीं करते हैं । लेकिन पूंजीपति लोग इनकी कमजोरियों को देखकर अपनी जरूरतें पूरी कर लेते हैं और इनकी जरुरतें कभी खत्म नहीं होती हैं । उपन्यास में इसका वास्तविक दृष्टव्य आदिवासी

[7] गायब होता देश, पृ. 104

पात्र वीरेन स्पष्ट करता है "हमारे बाबा-आजा ने तो नयं कहा था 1834 ई में कैप्टन थॉमस विलकिंसन साहब को कि आइए, यहां ऑफिस खोलिए । कचहरी खोलिए । कोई न्योता नयं भेजा था । कैप्टन थॉमस विलकिंसन खुदे 1834 ईस्वी में अमला-फैला, प्यून-प्यादा को लेकर आया । जो भी बाहर से यहां आया, बहुत बड़ा पेट लेकर, लेदा लेकर आया । और ऐसी राकसी भूख जो और कभी नयं खत्म होने वाली । बाहर से जो भी आया सबको जमीन की भूख । पैसे की भूख । ताकत की भूख । औरत की भूख। एक भूख हो तो बताया जाए।"[8] आदिवासियों को हड़पने में पश्चिमी क्षेत्रों में सदियों से पैदा हुई भूख के खत्म होने की संभावना ही नहीं है । स्वतंत्रता के पहले आदिवासियों पर पश्चिमी अफसरों का दबाव, अन्याय, अत्याचार, शोषण होता था । आज हमारे ही देश के अफसर, सेट-साहूकार, जमींदार उनका शोषण कर रहे हैं ।

आज विज्ञान के युग में आदिवासियों की आर्थिक स्थिति सोचनीय हो गई है । इनकी जरूरतें अधिक नहीं बल्कि बहुत सीमित हैं । लेकिन आज इनकी आवश्यक चीजें भी दूर होती जा रही हैं । पर इनको पूछने वाला कोई होता ही नहीं है । भोले-भाले आदिवासी सोचते हैं कि नौकरी मिल जाए तो खर्चा उठाएगा लेकिन यह सोच कब पूरी होगी? उनका आर्थिक जीवन ही दयनीय परिस्थिति में बीत रहा है तो यह आदिवासी पढाई कहाँ से कर सकते हैं? पूंजीपति वर्ग, सरकारी अफ्सर, दलाली करने वाले आदि इन आदिवासियों को कहाँ आगे बढ़ने देंगे? उपन्यास में इसी सन्दर्भ में आदिवासी पात्र रमा कहती है कि "मैट्रिक में सत्तर प्रतिशत से ज्यादा नंबर आया था, सो उस कॉलेज में पढ़ने का सपना पूरा हुआ । नीरज भी अपने प्रखंड में टॉप किए थे । लेकिन वह कॉलेज हम जैसे गरीब परिवार के लड़के-लड़कियों के लिए नहीं था । मिशन कॉलेज था। लेकिन उनमें और नीरज जैसे गाँव से आए लड़कों में बहुत फर्क था । उनकी बाइक, जींस, घड़ी, जूते, गिटार की जितनी कीमत होगी उतना तो हमारे परिवार की सालाना आमदानी नहीं होगी । वे हमारे लिए अजूबे, हम उनके लिए म्यूजियम से भागे किरदार। नीरज और मेरे जैसे

[8] गायब होता देश, पृ. 104

मुश्किल से पाँच परसेंट स्टूडेंट होंगे जिन्हें अपनी प्रतिभा और गरीबी पर गुमान था । नीरज और गाँव से आए आदिवासी लड़कों का उपनाम ही उनलोगों ने करंज रख दिया था । मैं आदिवासी तो नहीं थी, किन्तु गरीबी और प्रतिभा हमें एक धरातल पर ले आई थी।"[9] यहाँ तो केवल आदिवासियों की ही समस्या नहीं बल्कि गैर-आदिवासियों में भी कुछ लोग है जो गरीबी के कारण अपनी जरूरतें पूरी नहीं कर पाते हैं वह मजदूर बनकर रह जाते हैं । पूंजी, घुसकोर, के कारण आदिवासियों की आर्थिक स्थिति हाड़बड़ा जा रही है ।

आदिवासी धैर्यवान, वीर तथा स्वतंत्रता प्रेमी होते हैं । वे सीधे-सादे सहज स्वभाव के होते हैं और सभ्य लोगों की तरह धूर्त और लालची नहीं होते । कृषि-व्यवसाय उन्हें प्रिय है । धान की खेती विशेष रूप से होती है । इस पर रणेंद्र लिखते हैं कि "लेकिन वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि जिन लोगों को ज्यादा से ज्यादा ताकत, ज्यादा से ज्यादा धन, ज्यादा सोना, ज्यादा मुनाफ़ा चाहिए, जो लोग धरती प्रकृति-वनस्पति की इज्जत नहीं करते वे हमारे सहिया, साथी, दोस्त नहीं हो सकते। इनसे दूर रहना है। वे अलग तरह के लोग हैं । न वे हमारी तरह होना चाहते हैं न हमारी बातों पर उन्हें विश्वास है । उनकी भूख कभी मिट नहीं सकती । उन्होंने अपनी जरूरतों को इतना बढ़ा लिया है कि धरती की पूरी ऊपरी सतह, नदियों का मीठा पानी, जंगलों की सारी हरियाली, धरती के भीतर के सारे खनिज कम पड़ रहे हैं।"[10]

सभ्य समाज कहे जाने वाले लोगों को धरती के अन्दर जो-जो चीजे हैं सारी कम पड़ रही हैं लेकिन वहीं आदिवासियों की जरूरतें बहुत कम मात्रा में हैं उनको किसी का लालच नहीं है । आदिवासी रचनाकार हरिराम मीणा कहते हैं कि "आदिवासियों को जीने के लिए बहुत ही सीमित साधन चाहिए । यह उनके जीवन-संस्कृति की आदिम सोच रही है जिसमें अब तक बदलाव नहीं आया है। घास-फूस की झोपड़ी, यहाँ-वहाँ कुछ खाली पड़ी जमीन में अत्यंत कम

[9] गायब होता देश, पृ.270

[10] वही, पृ.134

मात्रा में खेती-बाड़ी और सहज उपलब्ध वनोपज को निकटवर्ती हाट-बाज़ार में बेचकर दैनिक उपयोग की कुछ आवश्यक वस्तुओं की खरीद से आगे उनकी मानसिकता नहीं बढ़ी है। अगर ऐसा न होता तो आदिवासी आज भी फटेहाल न रहकर जंगलों को नष्ट करने वाले ठेकेदारों की तरह साधन संपन्न होते।"[11]

आदिवासी अर्थव्यवस्था अधिकाधिक वन उत्पादों पर निर्भर रहती है । वे वनों से विभिन्न प्रकार के उत्पादनों का संग्रह करते हैं । जैसे वे वनों का संरक्षण करते हैं वैसे ही गैर-आदिवासी उनका दोहन शोषण करते रहे हैं । स्वतंत्रता के बाद वन नीति लागू होने के कारण वे वनों में जाकर उत्पादनों का संग्रह करने में कठिनाई महसूस करने लगे है । इस नियम ने इनको वनों से दूर कर दिया है । इन आदिवासियों की खुद की जमीन न होने के कारण ये एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते रहे हैं साथ ही साथ वे जंगली जानवरों का भी संरक्षण करते हैं । इन जंगली जानवरों की वजह से अपना जीविकोपार्जन करते हैं तथा यह इनका परम्परागत पेशा बन चुका है। लेकिन इन जंगली जानवरों को बचाने के लिए सरकार ने कई नियम लागू कर दिए हैं। जिससे इनका जानवरों से भी संबंध टूट गया है । परिणामस्वरूप आदिवासी जीवन संकट में पड़ गया है ।

3.1.3 राजनीतिक समस्याएँ :

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में भारत में उदारीकरण से अनियंत्रित पूंजी का जो प्रवाह हुआ, उससे मुख्यधारा के लोगों ने जो भी लाभ उठाया हो वह और बात है, लेकिन नुकसान उठाने वाले आदिवासी और हाशिए के लोग हैं । यह नुकसान अपने-आपको बर्बरता से नष्ट कराने के रूप में सामने आया । अपनी जाति, अस्मिता और जल, जंगल, जमीन को लुटते देखकर संघर्ष भी उपजा लेकिन आदिवासियों के इस संघर्ष में मुख्यधारा के लोगों का कोई सहयोग न होने से वह बहु-राष्ट्रीय कंपनियों की पूंजी की ताकत, देशी कार्पोरेट, मीडिया,

[11] आदिवासी दुनिया, हरिराम मीणा, पृ.179

प्रशासन, माफिया, राजनीति और पूंजीपतियों का इस लूट में एक साथ हो जाना और संघर्ष को दबाने के लिए सेना के उपयोग ने इन्हें अकेला और असहाय स्थिति में छोड़ दिया । इसका परिणाम यह हुआ कि मुंडा आदिवासियों का जीवन ही संकट में पड़ गया ।

उपन्यास में आदिवासी पात्र वीरेन कहता है कि "हमारे बाबा-आजा ने नेहरु जी को भी न्योता नयं भेजा था कि आइए, यही देश का सबसे भारी कारखाना लगाइए । हमारे धान के खेतों को रौंद कर, हमारे सरना-मसना को मिटा कर कारखाना बन गया । लेकिन बीस-पच्चीस साल बीतते थरभसा कर बैठ गया । का मिला नेहरु बाबा को सैकड़ों एकड़ धनहर खेत उजाड़ कर सैकड़ों किसान परिवार को मजूरा-भीखमंगा बना कर? का मिला? कारखाना भी घिसट रहा है । हम भी घिसट रहे हैं । लेकिन बाहर से लोगों का जो रेला आया वह हमारी ही जमीन-जायदाद के बल पर राज कर रहा है । माफियागिरी का होता है, यह तो इसी कारखाना की कालोनी की औलादों ने इस शहर को बताया । बीमार कारखाने के छंटे स्टॉफ क्वार्टर के ठंडे चूल्हों से जो पिशाच निकले वे इस शहर पर कालिख बन कर छा गए।"[12]

विशेष रूप से आदिवासियों की जरूरते बहुत सीमित होती हैं । जैसे भोजन, कपड़ा, आवास ये प्रत्येक मानव की मूलभूत आवश्यकताएँ हैं । इन्हीं जरूरतों से आदिवासी संतुष्ट रहते हैं । ये तो खबर नहीं भिजवाते कि हमारी संपत्ति को लुटने के लिए आओ ऐसी खबरे तो पत्र-पत्रिकाएं, समाचार, मीडिया के द्वारा सारी दुनिया में पहुंचाइ जाती हैं । बाहर से खुदगर्ज लोग आकर आदिवासी जमीन पर अधिकार कर लेते है, यही नहीं यहाँ के जंगलों को अपने कब्जे में लेकर आदिवासी लोगों के जीवन में बाधा, दुःख, दर्द उत्पन्न करते हैं । अपने स्वार्थ के लिए आदिवासियों का जीवन खतरे में डाल देते हैं फिर भी पूंजीपति वर्ग, सेठ-साहूकार, जमींदार तथा सरकारी अफसरों की जरूरतें, कभी नहीं खत्म होती हैं । इनका पेट घूसकोर, भ्रष्टाचार, काले धन के चक्कर में भूखा ही रहता है जो कभी भरने वाला ही नहीं है ।

[12] गायब होता देश, पृ. 104-105

"न जाने किस राकस ने मुनाफ़ा शब्द को जन्म दिया । पूरा माहौल ही बदल गया । सोना-चांदी, धन और ताकत की चाह, कभी नहीं खत्म होने वाली चाह, काली रात की तरह पूरी धरती को अपने पेट में समाने की कोशिश कर रही है । हमारे पूर्वज लेमुरियन लोगों ने भी सचेत किया था। लेकिन समय हमारे खिलाफ, उनके अनुकूल है । जो लाख रूपए किलो वाला ट्रैफल फाँक रहे हैं उनके लिए अनुदान और जो चकोड़ साग और माड़ पर जी रहे हैं वे परेशान। आज एदलहातु, कल मदुकम टोली, परसों बिरसाडीह, आगे न जाने कहाँ?"[13]

इन आदिवासी समुदायों को सत्ता लोभी नेताओं द्वारा अपने राजनीतिक स्वार्थों के लिए प्रयोग किया जाता रहा है । किसी रैली का आयोजन हो या किसी बड़े मंत्री का भाषण उन्हें गाड़ियों में भरकर इकट्ठा कर दिया जाता है । उनके विकास के वादे किए जाते हैं किन्तु आदिवासियों के हिस्से आती है केवल निराशा । 'दलाल' कहानी में इसी यथार्थ का चित्रण किया गया है । मंत्री की रैली व भाषण के बाद आदिवासी महिलाएँ शहर में गुम हो जाती हैं । शनिचरवा अपने परिचित नेता से उनको ढूंढने की गुहार लगाता है पर स्वार्थी नेता का विद्रूप चेहरा उसके सामने आ जाता है "अरे भाई शनिचरवा, छोड़ो इनकी चिंता ये मजदूर जात की औरतें और लड़कियाँ होती ही हैं ऐसी। तीन-चार दिन इधर-उधर मुँह मारेगी, देह नुचवाएगी और बटुआ भारी कर खुद-ब-खुद चली आयेंगी।"[14]

अब ऐसी स्थिति में आदिवासी कब तक देखते रहेंगे । परिणामत: इन आदिवासियों ने विद्रोह करना शुरू कर दिया । प्रकृति से प्राप्त संपत्ति जल-जंगल-जमीन पर अधिकार के लिए लड़ाई, आन्दोलन, भूख हड़ताल करने लगे । उपन्यास में रणेंद्र ने इस तरह वर्णित किया है "आदिवासियों ने 1767-70 के 'भूमिज आन्दोलन' से शुरू कर 1901 के बिरसा उलगुलान तक जो खून बहाए थे उस पवित्र खून के कतरों से सींच कर एक कानून बना था 'आदिवासी

---

[13] वही, पृ. 262

[14] सं. डॉ. नवीन कुमार नन्दवाना, समवेत (पत्रिका), समकालीन हिंदी, कहानी और आदिवासी जीवन-संत्रास, (आलेख), डॉ. कुलदीप सिंह मीणा, पृ 98

काश्तकारी कानून' । इससे आदिवासी जमीनों को सुरक्षित कर दिया गया । वे गैर-आदिवासियों को बेची नहीं जा सकती थी । जिला कलेक्टर को संरक्षण की जिम्मेवारी सौंप गई थी । लेकिन हर सरकारी कानून की तरह इसमें भी कई अगर-मगर थे । अगर...यह शर्त पूरी हो जाए तो जमीन ट्रांस्फर हो सकती है। लेकिन जनहित के लिए...परन्तु स्कूल-अस्पताल के लिए...। अगर जमीन का नेचर बदल गया हो । वहां खेती नहीं हो रही हो । घर बन गए हों ।...छप्पर सज गए हों ।...तो 'छप्परबंदी' की शर्त पूरी जमीन ट्रांस्फर हो सकती है । यह थी आदिवासियों की जानलेवा 'बैक्टीरिया'।"[15]

मुंडाओं की खेत-जमीन पर कब्जा करने के लिए सिंडिकेट बनाकर रियलएस्टेट कंपनियां स्थानीय पुलिस, नेता, माफिया आदि से मिलकर इनका शोषण करती रही हैं । प्रकृति की गोद में रहने वाले आदिवासियों को इसलिए मोड़ा जा रहा है क्योंकि वे अपनी संपत्ति को खोकर इस मुनाफाखोर संस्कृति के जाल में फँस जाएँ और अपनी जमीन का सौदा उन लुटेरों के हवाले कर दे जिनसे वे सदियों से लड़ते आ रहे हैं । इसी सन्दर्भ में उपन्यास में रणेंद्र लिखते हैं कि "इन भूत-प्रेत-चुड़ैलों ने आसानी से सब पर कब्जा कर लिया । उनके मायावी जादू का साम्राज्य कायम रहा । एकदम आंख बंद और डिबिया गायब वाला जादू चलता गया । आदिवासी जमीन के प्लाट दिन दहाड़े गायब होते रहे थे । सो बंद तहखानों की तड़पती आत्माओं की कराह, चीख, रुदन को कोई राहत नहीं थी।"[16]

उपन्यास में रणेंद्र ने अत्यंत मार्मिक रूप से मुंडा आदिवासियों की समस्याओं को चित्रित करते है कि किस तरह आदिवासियों को राजनीतिक जाल में फंसाया जा रहा है, तथा पूंजीपति, घूसखोर, भ्रष्टाचार के जरिए उन आदिवासियों की संपत्ति को छीन रहे हैं परिणामत: पूंजीपतियों को तो लाभ हो रहा है पर आदिवासियों का जीवन दूभर होता जा रहा है ।

---

[15] गायब होता देश, पृ. 77-78

[16] वही, पृ. 78

अपने स्वार्थ के लिए, केवल अपना पेट भरने के लिए औरों की संपत्ति को छीन लेना, उनके दुःख, दर्द को बढ़ाना कहाँ तक न्यायोचित है? आदिवासियों के प्रति सभ्य समाज के लोगों का स्वभाव घृणा से ही भरा होता है ।

3.1.4 सांस्कृतिक एवं धार्मिक समस्याएँ :

सृष्टि के विकास से ही मानव समाज में संस्कृति का जन्म हुआ है । डॉ. सच्चिदानन्द त्रिपाठी के शब्दों में "संस्कृति का अर्थ जिन्दगी को जीने का तरीका होता है । आप जो खाना खाते हैं, जिस तरह की पोशक पहनते हैं, जिस भाषा में बात करते हैं और जिस ईश्वर की प्रार्थना करते हैं यह सभी कुछ आपकी संस्कृति के ही पहलू हैं । बहुत साधारण शब्दों में हम कह सकते हैं कि हम जिस तरह से सोचते हैं, जो कुछ करते हैं, समाज के सदस्य के रूप में सभी कुछ जो हमारे पास है, वही संस्कृति है । इन्सानों और उनके समूहों की सभी उपलब्धियों को सामूहिक रूप से हम संस्कृति कह सकते हैं।"[17] आदिवासी समाज मानव इतिहास में संस्कृति के उन आरंभिक चरणों की ओर इशारा करता है, जहाँ से वह विकास की वर्तमान अवस्था तक पहुंचा है । प्रत्येक मानव समूह की संस्कृति में विशिष्टता का गुण पाया जाता है और यह गुण समाज के उन सदस्यों के अवदान से आता है जो निरंतर इसमें कुछ जोड़ कर आने वाली पीढ़ी के लिए इसे समृध्द करते हैं ।

'संस्कृति' का अर्थ इस तरह भी स्पष्ट किया जा सकता है कि "संस्कृति किसी समाज में गहरे तक व्याप्त गुणों के समग्र रूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने, विचारने, कार्य करने, खाने-पीने, बोलने, नृत्य, गायन साहित्य, कला, वास्तु आदि में परिलक्षित होती है । 'संस्कृति' का वर्तमान रूप किसी समाज के दीर्घ काल तक अपनायी गयी पध्दतियों का परिणाम होता है।"[18] आदिवासियों की सभ्यता और संस्कृति का परिचय हमें उनके साहित्य से मिलता है ।

---

[17] भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास, पृ. 1

[18] Hi.wikipedia .org /wiki / संस्कृति

जिसके अंतर्गत लोक गीत, लोक नृत्य, लोक कथा, आदि हैं और उनसे उनके जातीय गुण, धर्म का पता चलता है । लोक-जीवन की सामूहिक चेतना उनकी आशा-निराशा, दुःख-सुख, आशाएं-स्वप्न और संघर्ष की मार्मिक अभिव्यंजना का चित्रण हमें उनके साहित्य में मिलता है जिसे लोक साहित्य भी कहा जाता है ।

आदिवासी समाज की 'संस्कृति' परम्परागत रूप में विद्यामान रही है । लेकिन इनके संस्कृति के प्रति सभ्य कहे जाने वाले समाज की सोच क्या है? पर्यटक, लेखक, पत्रकार, मीडिया, समाज शास्त्री आदि उनके जीवन और रहन-सहन में कौतुहल और तमाशे के लायक चीजों को खोजकर लोगों का ध्यान आकर्षित करने और मनोरंजन के लिए उनका फायदा उठाने के लिए लोग आदिवासी समाज और संस्कृति की ओर जाते रहते हैं तथा उनकी संस्कृति का अंत करने की कोशिश भी करते रहते हैं ।

धर्म का अस्तित्व मानव समाज में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है । धर्म का अर्थ "भारतीय संस्कृति और दर्शन की प्रमुख संकल्पना तथा कर्तव्य, अहिंसा, न्याय, सदाचरण, सद्‌गुण आदि।"[19] धर्म अलौकिक शक्ति पर विश्वास का नाम है । भारतीय आदिवासियों की धर्म पर रही आस्थाओं की अनेक मान्यताएँ प्रचलित हैं । जीवित तथा मृत व्यक्तियों के बीच के भेद को ये आत्मा की शक्ति मानते हैं जो मृत्यु होने पर विलीन हो जाती है । इन मान्यताओं का विवेचन करते हुए एतवा कहता है "देह, जीयु(आत्मा) और रोवा(छाया) तीनों मिलकर होड़ों (इन्सान) बनते हैं । हर होड़ो एक निश्चित उम्र लेकर आता है, उसे 'जोम-सकम' कहते हैं । पत्तल पर रखा भोजन । भोजन खत्म, यानी इन्सान को जितनी उम्र मिली उतना जी लिया । सांस रुकने पर जीयु परोमपुर चली जाती है सिंगबोंगा के पास । लेकिन इन्सान का रोवा(छाया) यहीं रह जाता है । यह वही रोवा जो इन्सान जब सोया रहता है तो बाहर निकल कर घूमता है । रोवा जो देखता है, इन्सान उसे ही सपने में देखता है । यह जियु की तरह नहीं । इसकी भी

[19] Hi. M. Wikipedia. Org

अपनी जरूरत है, इसलिए गाड़ते समय चावल-पैसा सब रखा जाता है ताकि रोवा की जरूरत पूरी होती रहे।"[20]

इन आदिवासियों के देवी-देवता सिंगबोंगा, अदिंगबोंगा (पूर्वज देवता) देसउली बोंगा, मरांगबुरु आदि हैं । आज इन सारे सभ्य कहे जाने वाले लोगों के अधीन इनकी संस्कृति बिखेरी गई है । वीरेन अपना दुःख व्यक्त करते हुए कहता है कि "सबसे ज्यादा दुःख नीचे पुरना टोली के सरना के डूबने से हुआ केतना पुराना-पुराना सरजोम साखू था राजेश दा! आजा-दादा के जमाने का । एतना मोट-मोट तना कि दोनों हाथ फैलाने पर भी नहीं पकड़ाता था। सबसे पुराना साखू बा-जाइयर । मुंडा जन के सबसे पुरनिया पूर्वज लुटकुम हड़म और लुटकुम बुढ़ी का निवास । जिस गाछ के सूखल टहनी तक देंवडा-पूजार-पाहन विधि-विधान से उठाते हैं । उसी साखू गाछ को, हमारे बा-जाइयर को पूरे डूबा दिया राकस सब।"[21]

आदिवासियों के अधिकांश देवता प्रकृति प्रदत्त जंगल पहाड़ आदि होते हैं। इन आदिवासियों को उनके देवताओं से कभी नुकसान नहीं होता । इनका नुकसान तो सभ्य कहे जाने वाले बाहरी समाज से होता है । उपन्यास में वर्णित खड़ा निशान जिसमें सोमेश्वर के प्राण बचे थे जो देसउली बोंगा की ही दया "शायद सात दिनों से रात-दिन यहीं इन्तज़ार कर रहे थे । शायद उन्हें विश्वास था देसउली बोंगा मेरा नुक्सान नहीं करेंगे । मैं किसी बुरी नियत से हीरों को ढूंढ नहीं रहा था, सो देसउली बोंगा भी दया करेंगे । शायद देसउली बोंगा की ही दया थी कि सात दिन बाद भी सलामत था।"[22] आदिवासियों का मानना होता है ये कभी भी गलत रास्ते में जाते नहीं अगर कोई बुरी नीयत में जाता है तो उनको देसउली बोंगा भी दया नहीं करेंगे । इस प्रकार आदिवासियों का स्वभाव सहज सिध्द होता है ।

---

[20] गायब होता देश, पृ. 57

[21] वही, पृ. 246

[22] गायब होता देश, पृ. 145

आदिवासियों के प्रमुख देवता 'गृह देवता' हैं । उसे 'मुंडा', 'हो' आदि जाति के लोग 'अदिंगबोंगा' कहते हैं। इसकी चर्चा करते हुए एतवा कहता है "सर! जीयु तो परोमपुर में सिंगबोंगा के पास से हमें निहारता रहता है, एतवा ने बात बढ़ाई, लेकिन रोवा कहीं नहीं जाता। हमारे पास रहता है, बोंगा(देवता) बन कर, अदिंग-बोंगको (पूर्वज देवता) बन कर । हमारे सुख-दुःख का साझीदार, हमारा रक्षक, हमारा कवच, मुंडाओं को अमर बनाता।"[23] आदिवासियों के पूर्वज कार्य बहुत महत्वपूर्ण होते थे । उनके धार्मिक विश्वासों में पूर्वज पूजा का एक विशिष्ट स्थान रहा है । उनका विश्वास है कि पूर्वज पूजा से वे उनकी कृपा, दया प्राप्त कर सकते हैं । आज इनके परम्परागत विद्यमान रही संस्कृति एवं धार्मिक आस्थाएँ इनसे धीरे-धीरे दूर होने लगी हैं । आदिवासियों की संस्कृति, संप्रदाय को जीवित रखना है तो उनके प्रति आदर भाव होना चाहिए । विज्ञान, तकनीकी के युग में ग्राम देवताएँ ग्लोबल गाँव के देवताओं में बदलने लगी हैं ।

3.1.5 विस्थापन की समस्या :

'विस्थापन' आदिवासियों की नियति रही है, आज के समय में विस्थापन की समस्या ने विकराल रूप ले लिया है । विस्थापन की समस्या पहले भी मौजूद थी परन्तु भूमण्डलीकरण के दौर में पिछले दस-पन्द्रह वर्ष से यह समस्या तेजी से बढ़ रही है । पुंजीपतियों व बहुराष्ट्रीयों के लिए भूमि अधिग्रहण करने हेतु मत बध्द सक्रिय ही नहीं बल्कि आक्रमक भूमिका निभा रही है । खनिजों या उत्पादों की आपूर्ति के लिए सरकार बड़े पैमाने पर किसानों, आदिवासियों व अन्य गाँव वासियों का परिवेश लगातार बिखेर और उखाड़ रही हैं और सभी इनकी संपत्ति को नष्ट होते हुए देख रहे हैं । इस सन्दर्भ में रमणिका गुप्ता कहती हैं कि "देश आज़ाद होने से पहले ही अंग्रेजों ने आदिवासियों के जंगल में प्रवेश पर रोक लगाकर उन्हें वहाँ से ही खदेड़ने की योजना लागू करनी शुरु कर दी थी । इस प्रकार वे जंगल की उपज के सब अधिकारों से भी वंचित कर दिये गए । दरसल सरकार की ये वन नीतियाँ, वन प्रबन्धन और वन कानून उनकी स्वार्थपूर्ण

[23] वही, पृ. 57

तथा छल-बल की अभिरुचियों पर आधारित थी । आजादी के बाद भी औद्योगिकरण तथा व्यापारियों की धनलिप्सा इनका आधार बन गयी थी ।"[24]

आदिवासी अपनी मेहनत से जंगली और बंजर जमीन को भी उपजाऊ करते रहे हैं। आबाद और पथरीली जमीन को अपने खून से सींचकर शस्यश्यामला उपजाऊ बनाया है किन्तु उनकी ही जमीन पर उनके ही अधिकार को कभी जमींदारों ने मान्यता नहीं दी है "आज जमीन के मालिकों ने जमीन के व्यवस्थापकों ने और धरती के न्याय न धरती पर इनका किसी किस्म का हक नहीं जमने दिया है । जिस जमीन पर उनके झोंपड़ें हैं, वह भी उनकी नहीं हल में जुता हुआ बैल दिन-भर खेत चास करता है, इसलिए बैलों को भी धरती का हकदार कबूल किया जाये? यह कैसी बात है?"[25] औपनिवेशक शासन काल में मानभूम और सिंहभूम आदि में जंगल का कानून लागू करके अंग्रेजी सत्ता ने आदिवासियों की सारी जमीन और जंगल पर कब्जा कर लिया ।

'गायब होता देश' एक ऐसा उपन्यास है जिसमें भारत के विशेष रूप से झारखंड के मुंडा आदिवासी समुदाय का अपने अस्तित्व, आत्मसम्मान और अस्मिता की रक्षा के लिए लंबे संघर्ष और निरंतर मिटते जाने की प्रक्रिया का संवेदनशील चित्रण है । इस विस्थापन की समस्या के सन्दर्भ में रमणिका गुप्ता कहती हैं कि "देश में आदिवासियों की मुख्य समस्या विस्थापन की रही है । वे पहले भी खदेड़े जाते रहे हैं, आज भी खदेड़े जा रहे हैं । ये खदेड़ना सदियों से चालू हैं, बस केवल रूप या तरीका बदल गया है वे उजड़ रहे हैं । जल, जंगल, जमीन इन तीन महत्वपूर्ण मूल अधिकारों से वंचित हो रहे है और विडम्बना यह है कि ये सब हो रहा है उनके विकास या उनकी स्थिति में सुधार के नाम पर । आज जंगल में उनके प्रवेश पर रोक है । जिस धरती पर वे

[24] आदिवासी विकास से विस्थापन, प्र.10

[25] फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, पृ.113

बसते हैं, उसके गर्भ में खनिज है यानि संपदा है ऊपर नदियाँ और जंगल है पर वहाँ उनका प्रवेश वर्जित है।"[26]

वास्तव में आज के समय में सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाएँ मशीनरियों, जमींदारी के द्वारा हमेशा आदिवासियों को लूटने में व्यस्त रहते हैं। विकास के नाम पर आदिवासियों को सपनों में डुबा देते हैं "आदिवासियों को जमीन के बदले स्टेक होल्डर बनाने का सपना, हर अपार्टमेन्ट, स्काईस्क्रेपर में उन्हें फ़्लैट दिलाने का सपना, आदिवासियों के लिए...यह करने...वह करने का सपना, काश्तकारी कानून को और मजबूत करने का सपना और न जाने क्या...क्या ढेर सारे सपने।...बस सपना ही सपना।"[27] इस तरह आदिवासियों को लालच दिखाकर अपना स्वार्थ पूरा कर लेते हैं इसलिए आदिवासी केवल खानाबदोश जीवन बिताने पर मजबूर हैं।

आदिवासियों का अस्तित्व छीन लिया जा रहा है लेकिन वे कुछ कर नहीं पा रहे हैं। जमींदारों, पूंजीपतियों, सरकार के विरोध में कुछ करना इनके वश में नहीं है। वे सिर्फ परियोजनाओं का विरोध मात्र ही कर पाते हैं, लेकिन अपने अस्तित्व को बचाने में असमर्थ रहे हैं। इस सन्दर्भ में रणेंद्र लिखते हैं कि "कल तक जिस इलाके में सिंचाई के लिए, उसे धान का कटोरा बनाने के लिए आप दुलमी नदी बाँध परियोजना लाते हैं, दसे साल के बाद उसी सिंचित खेत, धान के कटोरा, धनहर इलाके में कहते हैं 'विशेष आर्थिक क्षेत्र' बनाएंगे। काहे भाई? दसे साल में सीन कैसे बदल गया रे भाइवा? अभी तो ढंग से नहर में पानी आना शुरुए हुआ है। अभी तो धान के बाद दु-चार बरस से गेंहू-आलू की खेतिए शुरू हुई है। अभी तो किसान के शरीर पर थोड़ी चमक आयी है कि एकाएक सपना आया कि जनहित में विशेष आर्थिक क्षेत्र ही जरूरी हो गया। ऐसन-ऐसन 'जनहित' वाला सपनवाँ कैसे आता है, सब को मालूम है? अब नोट से भरल तोशक-गद्दा पर सुतिएगा तो ऐसेन सपनवा सब आयेगा।"[28] वास्तव में देखा जाए तो

[26] आदिवासी विकास से विस्थापन, रमणिका गुप्ता, पृ. 10

[27] गायब होता देश, पृ. 153

[28] वही, पृ. 226

सभ्य कहे जाने वाले लोग आदिवासियों का पेट सपनों से भर देते हैं। एक परियोजना को पूरी तरह से फलित भी नहीं होने देते हैं और दूसरी योजना के बारे में सोचने लगते हैं। आदिवासियों को न्यायोचित मुआवजे के खातिर दलालों और वकीलों की शरण में जाना पड़ता हैं जो उन्हें अलग से लूटते हैं ।

विकास के नाम पर आदिवासियों को बहुराष्ट्रीय कंपनियां और पूंजीपति वर्ग के लोग इनकी जमीनों को अपने कब्जे में कर रहे हैं । आज तो भूमंडलीय निगमों के निरंकुश उत्पीड़न के नव-उपनिवेशवादी दौर में ये आंकड़े खतरनाक स्तर को छूने लगे हैं। जल-जंगल-जमीन पर पूर्णतः निर्भर आदिवासियों की तादाद इन विस्थापित लोगों में सर्वाधिक सोचनीय है । यह आदिवासी समुदायों की त्रासदी ही है कि प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से समृध्द होना ही उनकी जमीन के लिए अभिशाप बन गया है। आदिवासियों का जीवन इन खनिज संसाधनों के कारण नरक बन जाता है। वह जहाँ जाता हैं वहीं जमीन के नीचे से कुछ-न-कुछ मूल्यवान खनिज इत्यादि निकल पड़ते हैं और बाहरी लोग उन्हें हथियाने के लिए उसकी जमीन से उसे उखाड़ देते हैं। “उसका मन टूट गया। उसके मिट्टी खोदने पर कोयला या अबरक क्यों निकलता है और साथ-ही-साथ आ पहुंचते हैं अंग्रेजी-बंगाली-बिहारी लोग। इसका कारण क्या है? उसे कहीं शांति से रहने को क्यों नहीं मिलता? यह कैसी ही निर्जन जगह क्यों न जाय वहाँ की मिट्टी के निचे से कुछ-न-कुछ जरुर निकलता और वहाँ अच्छी-खासी बस्ती बन जाती उसकी मुंडा धरती और भी छोटी हो जायेगी ।”[29]

देश का उमदा किस्म का खनिज इन आदिवासियों के पहाड़ों-जंगलों में छिपा हुआ है जो आज इनके जी का जंजाल बन पड़ा है। एक जगह इस उपन्यास का पात्र कहता है कि “अगर लुटियन दिल्ली के नीचे कोयला निकल आए, इलाहाबाद सिविल लाइंस के नीचे बॉक्साइट, युरेनियम, चंडीगढ़ के नीचे आयरन और लखनऊ, चेन्नई ,बंगलूर के नीचे तो क्या उजाड़ेगा लोग

[29] चोट्टी मुंडा और उसका तीर, पृ.7

उसे? होगा वहाँ विस्थापन? नहीं, कभी नहीं । ऐसा कभी नहीं होगा। क्योंकि वहाँ रहने वाले एलीट सम्मानीय नागरिक हैं । भारत माता के अपने खास बेटे । फिर हम क्या हैं? केवल लाभुक, कोई टार्जेट ग्रुप या फिर किसी शोध के लिए एक ठो केस भर। क्या हैं हम? क्या मुआवजा के रजिस्टर के बस के एक नम्बर, या कि कल्याण विभाग के फाइल की फटी हुई झोली, फादर हॉफमैन, वरियर एल्विन जैसों की किताबों की ब्लैक एंड व्हाइट तस्वीरें। क्या हैं हम? सच बात है कि उनकी नज़र में हम हैं ही नहीं । फिर यह हमारी साँस लेती हुई जिंदगी क्या है?...क्या हम आपके सौतेले बेटे हैं भारत माता?"[30] स्पष्ट है कि जिन वन संपत्तियों पर परम्परागत अधिकार को कानून बनाकर राज्य-स्वामित्व के अंतर्गत कर लिया गया, सदियों से बसे सैकड़ों आदिवासी गाँव उजाड़ दिए गये, उन्हें उनके देवस्थान 'देसउली' पूजास्था 'सरना' से भी वंचित कर दिया गया उन समस्याओं के विरुध्द आदिवासी लड़ रहे हैं ।

उपन्यास में वर्णित आदिवासी दुलमी बाँध के खिलाफ नेतृत्व कर रहे परमेश्वर सिंह पाहन की हत्या को ऐसा रूप दिया जाता है कि "गश्तीदल पर घात लगा कर हमला । हमले का नेतृत्व परमेश्वर सिंह पाहन कर रहा था। दुलमी बाँध परियोजना का विरोध करते वह नक्सली संगठनों के करीब आ गया था । पाहन के साथ दो अन्य कुख्यात नक्सली भी जवाबी फायरिंग में मारे गए।"[31] इस स्थिति में पूंजीपति वर्ग के लोग तथा जमींदारों के हाथों में बिके हुए समाचार पत्र तथा मीडिया ने भी पूंजी की सत्ता को मजबूत बनाया । इसी सन्दर्भ में रिपोर्टर अमरेन्द्र मिश्र कहते हैं कि "आप ही सोचिए सर कि दुलमी नदि पर दो सौ करोड़ का बाँध । दो सौ करोड़ सर! यह तो अग्रवाल साहब की ग्रीन एनर्जी कंपनी की ही औकात थी सर! क्या नहीं है इस प्रोजेक्ट में? बिजली भी, नहर भी, फैक्टरी और खेतों के लिए पानी भी । विकास ही विकास । ये

[30] गायाब होता देश, पृ. 263

[31] गायब होता देश, पृ. 38

साले कोल्ह कहते हैं, जान देंगे जमीन नहीं देंगे । दे दो जान । अभी तो तीनो लोग मराया है।"[32]

स्पष्ट है कि आदिवासी अंतहीन त्रासदियों के दुश्चक्र में फँसे जा रहे हैं । भूमिहीन, गृहहीन ये कदम-कदम पर ठोकरें खाने को मजबूर हो रहे हैं । इन आदिवासियों की सुरक्षा प्रशासन में बैटे अफसरों की जिम्में सौंपी गयी है । इसी सन्दर्भ में थाना प्रभारी पाण्डेय कहता है कि "अब का करें सर! प्रशासन ऐसने ही चलावे पड़ता है। हिंया चौकीदारन सब भी ऊही है कोल्ह-बकलोल सब। कौन आपके साथ है, कौन नक्सलियन के कौने नहीं पता। ई बात तो तय है सर! कि फ़ायरिंगवा तो परमेसरे पहिले किया था हरामी। रउआ तो अपन परिवार हैं सर! आप से झूठ काहे बोलेंगे। बहुत जब्बर था, वीरचक्र का लिया था, बहुते मनचढ़ल था। जब देखीं तो लिडरई छांटे ला तैयार। सब झगड़ा-झंझट तोहनिए पंचैती कर-कर के गामे-बाट में निपटा देबे तो हमनी हिंया थाना में काहे ला बैठल हैं, सुथनी छिले खातिर?"[33]

आदिवासी विस्थापन के कारण अपने जमीनों तथा जंगलों से दूर होते जा रहे हैं। परंपरागत रूप से आदिवासी जीवन जंगलों पर आधारित रहता आया है। जंगल और आदिवासी सह-आस्तित्व के सिध्दांत पर फलते-फूलते हैं। लेकिन आज इनकी परिस्थिति दयनीय हो गई है लेकिन आज उनके पास अपने पूर्वजों की सामुदायिक भूमि नहीं है । उनके पुरखों की समाधियाँ विकास के नाम पर के नाम पर हड़प ली जा रही हैं । पूरी आदिवासी संस्कृति को नष्ट किया जा रहा है । इन समस्याओं को झेलते अपना जीवन बिता रहे हैं । अब विस्थापन और मुआवजे दे रहे राजनेताओं के बारे में आदिवासियों को समझमें आने लगा है । वे अब मुआवजा लेकर अपनी धरती और जंगल को बेचने के लिए तैयार नहीं हैं । ये इनके विरोध पर उतरने लगे हैं "हमें नहीं चाहिए मुआवजा किस-किस चीज का मुआवजा देंगे आप? मुआवजा लेकर जो लोग विस्थापित

[32] वही, पृ. 40-41

[33] गायब होता देश, पृ. 41

हुए, चन्द दिनों में उनके सारे पैसे खत्म हो गये । वे अपने घर और खेतों के साथ-साथ अपनी संस्कृति से भी कट गये।...हमारे खेत बचे रहेंगे तो हमारे बच्चों के बच्चों के काम आयेंगे।"[34]

प्रकृति के सान्निध्य में रहने वाले आदिवासी आज बिमारियों और कुपोषण का शिकार हो कर अकाल मृत्यु का शिकार हो रहे हैं । उनका जीवन घटता जा रहा है । यह केन्द्रीयकृत विकास का पूरा काम आदिवासियों और किसानों की भागीदारी को दरकिनार कर बिना उनसे बातचीत किये उनके ऊपर थोपा जा रहा है । पूंजीपति वर्ग तथा जमींदार अपने लाभ के लिए इन आदिवासियों का फायदा उठा रहे हैं ।

3.1.6 स्त्री समस्या :

आदिवासी समाज में प्रमुख समस्या है 'स्त्री शोषण' । स्त्रियों का शोषण प्रत्येक समाज में होता रहा है । उन्हें दैवीय गुणों से युक्त मानकर शोषित किया जा रहा है तो कहीं सदाचारणी के रूप में किन्तु आदिवासी समाजों में स्त्रियों की दशा बहुत दयनीय है। उन्हें अपनी पहचान तक से वंचित कर दिया गया है ।

आदिवासी समाज में खेती हो या श्रम, या शिकार हरहाल में स्त्री ने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम किया है । संसार में जितने अधिकार पुरुषों को हैं उतने ही स्त्रियों को हैं लेकिन आज समाज व्यवस्था ने इन दोनों के बीच भेद-भाव कर दिया है जबकि प्राचीन काल में मातृसत्तात्मक समाज व्यवस्था थी । समय के साथ यह व्यवस्था बदलकर पितृसत्तात्मक हो गई । इस व्यवस्था में परिवर्तन गैर-आदिवासियों से संपर्क बढ़ने के फलस्वरूप आया है। तभी तो 'गायब होता देश' उपन्यास की पात्र अनुजा कहती है कि "यहाँ सदानों या मुख्यधारा की स्त्रियाँ से बेहतर स्थिति है, बाकी बराबरी वाली बात यहाँ भी नहीं है । यह गैर-बराबरी का भाव मुंडा समाज में कब आया, ठीक-ठीक कहा नहीं जा सकता । सामन्ती समुदायों के संपर्क में आने से या

[34] मरंगगोडा नीलकंठ हुआ, पृ. 167

अंग्रेजों की भूमि व्यवस्था के कारण, नहीं कह सकती हाँ! यह जरुर हुआ कि उस वक्त लाला लोकनाथ साय, और रखाल दास हलधर जैसे सर्वेयर मर्दवादी समाज से आये थे । उन जैसे लोगों ने जब जमीन का सर्वे कर खतियान-पंजी सब बनाया, तो रैयत के रूप में केवल मर्दों का नाम ही दर्ज किया गया। उन्हें क्या पता कि जब जंगल काट कर खेत बना जो खूंटकट्टी कहलाया, उस खेत को बनाने में स्त्रियों ने मर्दों से कम मेहनत नहीं की थी। खेती में तो आज भी औरतें ही ज्यादा मेहनत करती हैं, किन्तु खेत के मालिक तो मर्द ही हैं। न जाने कब ये सहिया से मालिक बन गये। धीरे-धीरे हर निर्णय की जगहों से दूर कर दिया गया।"[35]

आदिवासी स्त्रियाँ घर का पूरा कारोबार संभालती हैं तथा खेती में भी मेहनत करती हैं जबकि गैर-आदिवासी स्त्रियाँ नहीं करती हैं । खेती में आदिवासी स्त्रियाँ पुरुषों से ज्यादा काम करती हैं तो भी इन्हें बराबरी का दर्जा नहीं मिलता हैं । आदिवासी स्त्रियों के इतना करने के बावजूद भी उनकी परिस्थिति दयनीय है इसी सन्दर्भ में अनुजा कहती है "मर्दों ने अपनी मिल्कियत कायम करने और समय-समय पर उसे जतलाने के लिए कुछ नियम, कुछ निषेध बनाये और उनके भंग होने पर सजाएं तय कीं । हमारे मालिकों ने तय कर दिया कि औरतें हल नहीं चला सकती, पाटा नहीं दे सकतीं, छप्पर नहीं छा सकतीं, कपड़ा-खटिया नहीं बुन सकतीं । ससन-मसान में नहीं जा सकती। इतने से मन नहीं भरा तो मर्द-मालिकों ने छुआछूत के भी नियम गढ़े । अखड़ा में लड़का-लड़की हाथ पकड़ कर नहीं नाच सकतें।"[36]

स्त्री शोषण सिर्फ़ आदिवासी समाज में ही नहीं बल्कि गैर-आदिवासी समाज तथा संपूर्ण स्त्री जगत की समस्या है । पुरुष वर्ग स्त्रियों को एक भोग की वस्तु समझता है । आदिवासी कविताओं के माध्यम से अपने समाज की प्रताड़ित महिलाओं की आत्मा की चीख, मदद के लिए पुकारती आवाजें, पहाड़ों, जंगलों और घाटियों में नगाड़े की तरह बजने लगती हैं । पहाड़ हिलने

[35] गायब होता देश, पृ. 266

[36] वही, पृ. 266-267

लगते हैं । इस सन्दर्भ में 'ब्याह' कविता में डॉ. मंजू ज्योत्स्ना के अनुसार वह ऐसे पुरुष का विरोध करती हैं जो स्त्री को सिर्फ़ चूल्हा और बिस्तर के माफिक समझता है । वह कहती है –

"पिता मेरी शादी मत करना

मैंने देखि है-बुधनी की जिन्दगी

बाल बच्चे संभाल खेत में खटती है,

उसका मर्द सांझ, सवेरे, रात

मारता है कितना ।"[37]

आदिवासी स्त्रियाँ जन्मत: दु:ख को झेलती हुई जीवन बीता रही हैं । जन्म से लेकर मृत्यु तक इन आदिवासी स्त्रियों के साथ शोषण, अत्याचार होता रहा है । जिसको स्पष्ट करते हुए सोनामानी दी कहती है कि "कौन-कौन कोठरी-झोंपड़ी में जवान औरत-सियानी है और कौन में नया बियाहल जोड़ी। एक ठो झिर्री, कोई छेद, हल्की-आधी खुली खिड़की-साहबवा को चुम्बक की तरह खींचती। उसके बाद घंटा-घंटा चिपकल रहता। खिड़की का तो और भी फायदा उठाता। अगर कोठरी में रोशनी रहती तो वीडियो कैमरा से वीडियो भी लेता। कोई जोड़ी जगी रहती प्यार-व्यार में मगन, तो साहबवा के देह की कंपकंपी और चेहरे की ख़ुशी देखके लगता कि लॉटरी लग गई हो। दु ठो बाडीगार्ड थोड़ी दूर से नजर रखे रहते।"[38] यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियों पर पुरुषों की नीच दृष्टि हमेशा लगी रहती है । अकेली स्त्री बाहर दिखने पर उनका पीछा करते है ।

[37] आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी-सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, 2008, पृ. 98

[38] गायब होता देश, पृ. 161

यहाँ शोषण केवल आधुनिक समय से ही नहीं बल्कि यहाँ तो स्वतंत्रता पूर्व समय से ही चलता आ रहा है तब से अब तक स्त्रियां अन्याय, अत्याचार से पीड़ित होती आ रही हैं, इसी सन्दर्भ में सोनामानी दी कहती है "सेकेंड वर्ल्डवार के समय 1935-40 में ब्रिटिश सेना के इस्टर्न कमांड का हेडक्वार्टर बना किशनपू, ऊपर, बाज़ार, नीचे बाज़ार और दुरंगदह में पुलिस छावनी। लेकिन अब पूरा शहर मिलिट्री कैंप से भर गया। यूरोप के कई देशों के, अमेरिकी-अफ़्रीकी, यानी सभी रंग के फौजी यहाँ जत्थो में घूमते दिखाई पड़ने लगे। उनके आने से चहल-पहल बढ़ी बाज़ार में दुकाने बढ़ी आमदनी बढ़ी, दूसरी ओर यहाँ के रहवासियों की तकलीफें भी बढ़ी। वे किसी भी जवान औरत को देखते तो 'लाल बीवी'...'लाल बीवी'...चिल्लाना शुरू कर देते, पीछा करते-करते उसके घर में घुस जाते।"[39]

स्वतंत्रता पूर्व भारत का राज्यतंत्र पूरा अंग्रेजों के हाथ में रहा है। जब उन्होनें भारत को ही अपनी मुठ्टी में बाँध कर रख लिया था तो फिर स्त्री नाम की कोई चीज ही क्या है, सृष्टि को आगे बढ़ाने वाली माता है आज उसी जन्मदात्री के साथ बलात्कार किया जा रहा है ऐसी स्थिति में माता की पूजा कहाँ हो रही है? उपन्यास में पूंजीपति वर्ग का परशुराम स्त्रियों के पीछे पड़ा रहता है "अपना मिनी बस का नाम रखले था परशुराम। हाट-बाज़ार के दिन खुदे कांडक्टरी करता। गंदा बुध्दी का था। हाट के दिन बेसी भीड़-भाड़ होता है। सियानीमन ही ज्यादा रहती है। छूने-सटने के चक्कर में कांड़क्टरी का बहाना करता। कभी जांघ पर हाथ फेर रहा है कभी छाती में केहुनी सटेले है। लेहाजे-शरमे और भय से भी चुपे रहती सियानी मन।"[40]

स्पष्ट है कि हाट-बाज़ार में बाहर से आने वाले सारे मर्दों की कल भी यही सोच थी, आज भी यही सोच है अगर अकेली स्त्री घर से बाहर जाए तो उसके पीछे पड़ते हुए डेरे में घेरने की कोशिश करते हैं। इसी सन्दर्भ में अनुजा उनके साथ हुए एक हादसे को व्यक्त करती है "छुट्टी में

[39] गायब होता देश, पृ. 89

[40] वही, पृ. 254

घर आई हुई थी । साँझ ढल रही थी। कुआँ से पानी ले कर आ रही थी। जेकरांडा के दाई वाली गली एकदम सूनसान थी । एक मातल मरद, किसी घर का मेहमान था, पहचान नहीं रहा था, दारु के जोश में मरदानगी दिखाने की कोशिश की और उसका भी वही हश्र।"[41]

वर्तमान समय में इन समस्याओं का सामना करते हुए स्त्री संघर्ष करती हुई विजय प्राप्त कर रही है । समय के साथ-साथ पुरुषों के बराबर कार्य भी कर रही है । वह चपरासी से लेकर संविधान तक पहुंच चुकी है तो भी वह अपमान, शोषण की शिकार बन रही है । स्त्री को 'भू माता' 'पृथ्वी माता' इस तरह से केवल नाम ही दिए गए हैं लेकिन उसका सम्मान करने वाले ही नहीं हैं । अगर स्त्रियों की संख्या घटती जायेगी तो सृष्टि ही समाप्त हो जायेगी ।

3.1.7 पर्यावरण से संबंधित समस्या :

तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या व आर्थिक विकास के कारण भारत में कई पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं और इसके पीछे शहरीकरण व औद्योगीकरण में अनियंत्रित वृध्दि बड़े पैमाने पर विस्तार तथा तीव्रीकरण, जंगलों का नष्ट होना, आदिवासी पर दुष्प्रभाव आदि डाला जा रहा है । आदिवासी जंगलों में आदिकाल से निवास करते आ रहे है । सभी की आवश्यकताओं की पूर्ति जंगलों से होती है । इन लोगों में वन-संरक्षण करने की प्रबल वृत्ति पाई जाती है। अत: वन्यजीवों से उतना ही प्राप्त करते हैं, जिससे उनका जीवन सुलभता से चल सके और आने वाली पीढ़ी को भी वन-स्थल संपत्ति के रूप में सौंप सके । इसी सन्दर्भ में रणेंद्र लिखते हैं कि "प्रकृति से उतना ही लेना जितना हमारे समुदाय को जरूरत है ताकि अगली पीढ़ी को वैसी ही प्रकृति और बेहतर रूप में सौंप के जाएं । इसीलिए हमने सब सँजो कर रखा। वनस्पतियों-जीवों को, खनिजों, नदियाँ-पहाड़ों को । लेकिन सारी आफतें हमारे ही ऊपर, क्योंकि आज़ाद भारत के नए तीर्थ स्थानों को हमारी जमीन नदी, जंगल, खनिजों की जरुरत

[41] वही, पृ. 268

थी।"[42] अंग्रेजों ने आदिवासी क्षेत्रों की परंपरागत व्यवस्था को तहस-नहस कर दिया। शहरीकरण तथा औद्योगिकरण के लिए वन एवं वन्य-जीवों को छिन्न-भिन्न कर दिया । आज आदिवासी क्षेत्रों में पूंजीपति वर्ग, ठेकेदार, जमींदारों की उपस्थिति के कारण बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ कई प्रकार के खनिजों के खदान के लिए इन लोगों के निवास स्थान उखाड़े जा रहे हैं ।

वन्य, जीव, जगत तथा पर्यावरण एक-दूसरे के पूरक हैं जब इसमें असंतुलन पैदा किया जाता है तो इसके चलते पर्यावरण प्रदूषण तथा प्राकृतिक आपदाओं का जन्म होने लगता हैं । रणेंद्र ने 'गायब होता देश' में वन्य, जीव, जगत, प्रकृति के साथ हो रहे शोषण तथा अन्याय को स्पष्ट किया है "लेकिन इंसान थोड़ा ज्यादा समझदार हो गया । उसने सिंगबोंगा की व्यवस्था में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया । उसने लोहे के घोडें दौड़ाने के लिए शाल वन की लाशें गिरानी शुरू कर दीं । फिर उसे लगा कि इन ऊंचे अजर-अमर शाल पेड़ों पर पूर्वज और ग्राम देवता देसवली बोंगा ही क्यों आराम करें, वो खुद क्यों न आराम करे । उसने बंदरगाह बनाने, रेल की पटरियां बिछाने, फर्नीचर बनाने, मकान बनाने के लिए अंधाधुंध कटाई शुरू की। मरांग बुरु-बोंगा की छाती की हर अमूल्य निधि, धातु-अयस्क उसे आज ही, अभी ही, चाहिए था। नहीं तो उसे पिछड़ जाने का भय था । वे दौड़ में अपनी परछाइयों से प्रतिद्वंद्विता कर रहे थे। उनकी राक्षशी भूख पल-पल बढ़ती जा रही थी । एक ख़ास बात थी, जो जितना ज्यादा समझदार था वह आसमान में उतना ऊँचा उड़ रहा था।"[43]

विकास के नाम पर वनों की अंधाधुंध कटाई, जन संख्या वृध्दि, नदी-बाँध परियोजनाएं, खनिजों का उत्पादन करना, कंपनियां, कारखानें, वाहनों की वृध्दि आदि कारणों से पर्यावरण को प्रदूषित किया जा रहा है। वायु प्रदूषण हो ध्वनी प्रदूषण हो जल प्रदूषण हो या भूमि प्रदूषण सबमें व्यवसाय की भागीदारी होती है । कई प्रकारों से पर्यावरण प्रदूषण बढ़ता जा रहा है ।

---

[42] गायब होता देश, पृ. 262-263

[43] वही, पृ. पूर्वकथन, पृ.2-3

उत्पादन इकाईयों से निकलने वाली गैसों और धुंए से मशीनों, वाहनों के उपयोग से, औद्योगीकरण तथा शहरीकरण के विकास, खनन तथा खदान संबंधी गतिविधियाँ आदि कारक होते हैं । इन प्रभावों के कारण प्रकृति में आपत्तियां बढती हैं जैसे सूखा, बाढ़, कम वर्षा होना, भूमि का बंजर हो जाना तापमान वृध्दि, सुनामी, भूकंप जैसी प्राकृतिक आपदाओं ने मनुष्य जीवन को उथल-पुथल कर रख दिया है ।

आदिवासियों का जंगलों के साथ गहरा संबंध रहा है तथा जंगलों, वनों पर सामूहिक अधिकार रहा है । आदिवासी के लिए अत्यंत कीमती जगह पर जीवन बिताना उनके लिए पाप बन जाता है । यही कीमती जगह उनके लिए जानलेवा वायरस बन गई है । 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में एक पात्र कहता है कि "हम विकिरण को पचा सकते हैं पर अपने और अपने बच्चों की भूख बर्दाश्त नहीं कर सकते तो हम निरुत्तर हो जाते हैं, उनका तर्क है, विकिरण तो हमें बाद में मारेगा ! मगर भूख तो हमें कुछ ही दिनों में मार डालेगी। अपने बाल बच्चों को कब तक भूख से तड़पते देखा जा सकता है?"[44] आदिवासी लोगों कीमती जगह पर जीवन बिताने पर भी उनमें कुछ बदलाव तो नहीं आयेगा लेकिन वही कीमती जगह उनके लिए कब्र बनती जा रही है । इसी संदर्भ में 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में आदिवासी पात्र अपने दुःखों को व्यक्त करते हुए कहता है कि "गरीबी ऐसी चीज है मैडम कि आग में भी कूदने को तैयार हो जाते हैं लोग । अब हमारे ही गाँव के लोगों को देखिए । हमारे संगठन द्वारा इतनी जागरूकता लाने के बावजूद क्या वे पेट पालने के लिए पुरे नियम खदानों या मीलों में मजदूरी नहीं करते? नंगे हाथों से बेलचा पकड़कर युरेनियम अयस्क वाले पत्थरों के ढेर से पत्थरों को क्रशर में गिराते वक्त विकिरण की मार नहीं झेलते? जिनके घर टूट गए...खेत चले गए...वे बेचारे करें भी तो क्या करें?"[45]

---

[44] मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ, पृ.362

[45] वही, पृ.362

विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों की लूट विकास नहीं विनाश है जिसे हम अपना विकास समझ कर आँखें बंद कर तेजी से करते चले जा रहे हैं। विकास के जिस पश्चिमी मॉडल, औद्योगिकी मॉडल ने पर्यावरण को तो छिन्न-भिन्न किया है, वहीं चारों तरफ आज जिस प्रकार का संकट दिखाई पड रहा है, उससे ऐसा महसूस होता है कि जैसे सारी दुनिया पागल हो गयी है और पर्यावरण से दुश्मनी निभाता विकास महसूस हो रहा है। इंसान ने प्रकृति के साथ ही जैसे युध्द छेड़ दिया है "सभी जानते है कि युरेनियम अयस्क से शुध्द युरेनियम निकालने में कितने ज्यादा पानी की जरुरत पड़ती है। आस्ट्रेलिया में पानी की बहुत किल्लत है। इसके बावजूद युरेनियम की प्रोसेसिंग में अरबों लिटर पानी का इस्तेमाल किया जाता है। वह पानी युरेनियम कचरों के साथ जमीन के अंदर जाकर भूमिगत जल स्त्रोतों को भी तो जहरीला बना रहा है? जब हम जानते हैं कि युरेनियम कचरे को सुरक्षित रखने का कोई कारगर उपाय विश्व भर में कहीं भी ईजाद नहीं किया जा सकता है तो क्यों हम अपनी आनेवाली पीढ़ियों की बर्बादी का कारण बन रहे हैं? युरेनियम कचरे से बर्बादी...परमाणु हथियारों से बर्बादी...फिर भी हमें चाहिए युरेनियम! और युरेनियम !! और और युरेनियम !!!"[46]

यहाँ स्पष्ट होता है हमारे वैज्ञानिक...हमारे बुध्दिजीवी, हमारे अनुसन्धान कर्ता पश्चिमी देशों से नियंत्रित तथा निर्देशित होते रहे हैं। क्यों हम उनकी तरह परमाणु ऊर्जा को बढ़ावा दे? अपनी पारंपरिक खेती, जैविक खेती को छोड़ विदेशी वैज्ञानिकों की बात सुनकर हमने रसायनिक खेती की और उसका दुष्परिणाम भुगता है। हमारे देश के नेताओं को आदिवासी समाज के विकास से कोई संबंध ही नहीं हैं उसे तो सिर्फ़ मल्टीनेशनल कंपनियों के मुनाफों और उनसे मिलने वाले कमीशन से ही काम है। यहाँ तो आदिवासियों के फायदे उठाते हुए उनका शाप ले रहे है।

[46] वही, पृ.369

सिर्फ़ अपनी स्वार्थ के लिए ही आदिवासी समुदाय को खतरे में डाला जा रहा है । आज यहाँ समस्या विश्व भर के आदिवासियों की है। अमेरिकी आदिवासी मुखिया सिएथल इन कारकों से उत्पन्न होने वाले समस्याओं को स्पष्ट करता है-

"अपने वातावरण को यदि दूषित करोगे

तो देखना, किसी रात

तुम्हारा दम उसी गंदगी में घुट जायेगा

पर अपने विनाश में भी तुम चमकोगे,

उस भगवान के दिए हुए तेज से,

जो तम्हें धरती पर लाया,

और किसी विशेष उद्देश्य से

धरती का और आदिवासियों का शाशक बनाय।"[47]

आदिवासियों का जन्म तथा मृत्यु प्रकृति में ही होती है, इनके पास तो संपत्ति के नाम पर होती है शुध्द हवा, हरे-भरे वृक्ष स्वास्थ्य पेड़, स्वच्छ पानी, जंगलों से ढके पहाड़, पंछी-जानवर, जंगली फूल-फलों से लदे पेड़ आदि हैं । आज इस संपत्ति को दूषित करने वाले पूंजीपति वर्ग, सरकार को खयाल रखना चाहिए कि वे सिर्फ़ आदिवासियों के साथ ही पूरी सृष्टि का भी नुकसान कर रहे हैं । इसी सन्दर्भ में हरिराम मीणा कहते है "बहुत गंभीर हो कर सोचने की जरुरत है कि पृथ्वी के विभिन्न हिस्सों की हरियाली को नष्ट कर कंकरीट के जंगल उगाने वाले

[47] आदिवासी दुनिया, पृ.187

कम से कम आदिवासी तो नहीं रहे। भरत झुंझुनुवाला जिस वर्ग का मानसिक प्रतिनिधित्व करते हैं, उसी वर्ग ने प्रकृति की सत्ता के विरोध में अपनी भूमिका निभाकर कंकरीट के जंगल उगाये हैं और यही वजह है कि अब हर जागरूक इंसान यह सोचने लगा है कि प्रकृति की ओर लौटने के अलवा कोई विकल्प नहीं है जिससे मानव जाति, अन्य प्राणी जगत और पेड़-पौधों को बचाकर 'इकोलाजिकल बैलंस' बनाए रखा जा सके।"[48]

आज सभी आदिवासी जल,जंगल, जमीन, जानवर को बचाने के लिए धरती को हरा-भरा रखने के लिए लड़ रहे हैं। आदिवासी समाज पेड़ की पूजा करता है। ये आज भी पेड़ों को बचाने के लिए लड़ रहे हैं इसलिए उनकी परंपरागत संस्कृति, तथा उनकी संपत्ति को बचाना हमारे लिए आवश्यक है।

3.2. 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में चित्रित समस्याएँ :

'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में वी.चन्द्रशेखर राव ने चेंचु आदिवासियों की समस्याओं को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। चेंचुओं के साथ हो रहे अन्याय, अत्याचार, शोषण और विस्थापन की जूझन इसमें दिखाई देती है। राजनीति का अतिक्रमण, आदिवासियों के गाँव को नक्सलबाडी के नाम से घोषित करने वाली पुलिस, राजनैतिक नेताओं के षड़यंत्र आदि को लेखक ने यथार्थ परख परिस्थितियों के साथ पाठकों के सामने उजागर किया है।

इस उपन्यास में हम देख सकते हैं कि प्रशासकों, रेविन्यु (revenue) अधिकारी तथा स्वयंसेवी संस्थाओं के कार्यकर्ताओं के प्रवेश से आदिवासी समाज में परिवर्तन की गति किस प्रकार तेज हो जाती है। विकास के नाम पर आदिवासियों की जमीन को हड़प लिया जाता है। उनको अपने क्षेत्र से विस्थापित करके मजदूर बनने पर मजबूर किया जाता है।

[48] वही, पृ.189

'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में लेखक चेंचु आदिवासियों की जीवन गाथा को, अत्यंत दूभर परिस्थितियों में जीवन बिता रहे उनके जीवन के यथार्थ को तथा उनकी समस्याओं को चित्रित किया है। सम्पूर्ण उपन्यास में एक जाति के अतीत, वर्तमान और भविष्य की ओर बढ़ रहे उनके कदमों का वर्णन है। इस उपन्यास के अध्ययन के दौरान चेंचु जाति की जो समस्याएँ सामने आयी हैं वह इस प्रकार हैं।

3.2.1 सामाजिक समस्याएँ :

आदिवासी साहित्य में आदिवासी समाज को अनेक समुदायों और अनेक आंतरिक क्रिया-कलापों में विभाजित किया जा सकता है। समुदाय के रूप में पूरा समाज परस्पर सहयोग की भावना से सम्बध्द होता है। सहयोग की यह भावना हर आदिवासी क्षेत्र में व्याप्त होती है। सामाजिक क्रिया कलापों के मूल में भी इसी भावना की प्रधानता होती है। आदिवासी समाज की यह विशेषता है कि यदि किसी व्यक्ति विशेष पर कोई आपत्ति आती है तो पूरा गाँव उस पर विचार करता है तथा उसका समाधान खोजता है। यहाँ समाधान गाँव के लोग और वृद्ध व्यक्ति या गाँव के नायक के समक्ष पंचायत के रूप में पेड़ के नीचे बैठ कर खोजते हैं। इसमें किसी भी प्रकार की समस्या अर्थात घरेलू झगड़े, वाद-विवाद, विवाह, तलाक, चोरी का आरोप लगाना आदि विषयों पर पंचायत सक्रिय रूप से विचार विमर्श कर अपना निर्णय सुनाती है। आदिवासी समाज परम्परा का पालन करता है। आदिवासियों की अपनी भाषा एवं सांस्कृतिक पहचान है। उनकी सामाजिक संरचना समूह पर आधारित है। भारत में अनेक जनजातियाँ अपना विशिष्ट समूह विशिष्ट क्षेत्रों में बनाकर निवास करती हैं। इनके कुछ ऐतिहासिक कारण है। उनके साथ बड़ा अन्याय हुआ हैं। "आर्यों ने कुछ आदिवासियों को परास्त कर अपना दास बना लिया, अलबत्ता उत्तरपूर्वी भारत उनकी पहुंच से बाहर ही रहा, अन्य आदिवासी जंगलों या पहाड़ी

प्रदेशों में पलायन कर गये । इस प्रकार जो भी आदिवासी समुदाय आर्यों के आक्रमण से बच निकले, वे अपनी अलग संस्कृति और पहचान कायम रखने में कामयाब रहे।"[49]

भारत में अधिकांश जनजातियाँ अपना समूह बनाकर रहती हैं । 'आकुपच्चनि देशम्' में चेंचु जनजाति भयावह जंगल में निवास करती हैं । यह जाति कई गाँवों तथा समूहों में विभाजित हैं जो लेखक ने इस उपन्यास में चित्रित किया है ।

चन्द्रशेखर राव ने 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में चेंचु आदिवासियों को सभ्य समाज से किस तरह पृथक किया गया है और जमींदारों का दबाव, अन्याय, अत्याचार, शोषण, सभ्य समाज से पीड़ित होना इस तरह की अनेक समस्याओं को चित्रित किया है । चेंचु आदिवासी हरे-भरे जंगल में जीवन यापन करते हुए अपना एक समूह बना लेते हैं । किसी एक घर में पर्व-त्योहार, विवाह कार्यक्रम होने पर सभी लोग भाग लेते हैं । इस तरह उनका एक समुदाय बन जाता है तथा उनके क्षेत्र से गहरा संबंध हो जाता है ।

जंगल में फलते-फूलते जीवन बिता रहे चेंचु आदिवासियों के क्षेत्र को सभ्य समाज टुकड़ों में बाँट देता है । राजकीय नेता, एन.जी.ओ के कार्यकर्ता, पुलिस, जिलाधीश आदि अधिकारी चेंचुओं को उनके निवास स्थान छोड़ने के लिए मजबूर करते हैं ।

चेंचु आदिवासी अपना निवास स्थान छोड़कर दूसरे स्थान को ढूढ़ते हुए जाते हैं,तब उपन्यास का मुख्य पात्र वीरा उस स्थान को देखते हुए सोचता है कि "कितना दुःख, मरण, गुलामी,लूटना, पीड़ा यही जमीन के नीचे चेंचुओं की आत्माएँ खत्म हो गई हैं, आत्माओं के साथ शरीर भी शुष्क हो कर मृत्यु के रुप में जमीन के अंदर लुप्त हो गया हैं।"[50] इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि चेंचुओं का अपना एक समूह होता है लेकिन उस समूह को विस्थापित कर दिया जाता है। वे बाहरी समाज में जीवन नहीं बिता सकते हैं, क्योंकि बाहरी समाज के लोग इन्हें

[49] आदिवासी कौन, रमणिका गुप्ता, पृ .29

[50] आकुपच्चनि देशम्, पृ.71

चोरी, लूटने वाले के नाम से घोषित करते हैं। वास्तव में वे ही इन्हें लूटकर उन पर अत्याचार करते हैं। ख़ासकर महिलाओं को इन बाहरी समाज से किसी भी तरह की रक्षा नहीं मिलती है। चेंचु आदिवासी सहज रूप से डरते हैं। अपनी बातों को व्यक्त करने में ज्यादा शर्माते हैं। इसीलिए वे उनकी समस्याओं को खुद व्यक्त नहीं कर सकते।

चेंचु आदिवासी शारीरिक रूप से लंबे होते हैं लेकिन मानसिक रूप से इनका स्वभाव नहीं बढ़ पाता है। उनको सभ्य समाज में लाने से पहले उनके स्वभाव, सांस्कृति, आचार-विचार को समझना आवश्यक है। ऐसा न कर उनपर सभ्य समाज की सारी चीजों को थोपा जाता है। एक प्रकार से यह उनपर अत्याचार है।

उपन्यास का एक पात्र भीमुडू आय.टी.डी.ए के कार्यालय में काम करता है, वहाँ पुलिस स्टेशन के सामने चिना गुरय्या की लाश को लेकर बैठे हुए चेंचुओं के साथ हो रहे अन्याय को पुलिस के सामने व्यक्त करता है कि "बहुत डर गये हैं सर ओ लोग दस दिनों से इनके पीछे पड़े हैं भगा रहे हैं, जंगल में ही जाना उनका दृढ़ विश्वास है। जंगल और गूडेम के बिना कुछ नहीं जानते, दस दिनों से खाना-पानी तक नहीं है छोटे बच्चे के जैसा स्वभाव है क्या पाप किया है, इन लोगों को मुठ्ठी भर चावल और शराब रहने से वे अपना पेट भर लेते हैं। वे लोग इन्हें बकरियों के झुण्ड की तरह भगा रहे हैं, सारे लोग मर जाएंगे।"[51]

आदिवासी समाज अपने अस्तित्व को बनाये रखने हेतु अनेक प्रयास करता है। जितना वह अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहे हैं, उतना ही उनकी समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। आदिवासियों का सामाजिक, सांस्कृतिक अस्तित्व खतरे में है। आदिवासी समूह भोजन संग्रह की तलाश में घूमते रहते हैं। ये घुमन्तु आदिवासी जंगलों से आजीविका चलाते हैं। आदिवासियों के सन्दर्भ में घुमन्तु शब्द एक पारिभाषिक शब्द हैं। घुमन्तु दो प्रकार के होते हैं। एक वे घुमंतू जो देश प्रदेशों

---

[51] वही, पृ. 92

में भटकते हैं और दूसरे वे जो अपने ही जंगलों में भटकते हैं। इस उपन्यास में दूसरे प्रकार के घुमन्तु आदिवासी हैं। उनके बीच स्वास्थ्य और शिक्षा, सरकार के द्वारा अमल की गयी योजनाएँ पहुंचना बहुत ही कठीन है क्योंकि पूंजीपति, भ्रष्टाचार आज के समय में अधिकारियों के लिए नौकरी की तरह बन गया है । आदिवासियों को अन्याय के साथ उनके गले खाए जा रहे हैं ।

आदिवासियों का अपना एक अस्तित्व है जो जल, जंगल, जमीन से जुड़ा है। आज वही अस्तित्व राजकीय नेताओं, सरकार तथा अधिकारि स्वार्थ सिद्ध एन.जी.ओ संस्थाओं द्वारा हड़प लिया जा रहा है। ऐसी स्थिति में उपन्यास का एक पात्र स्पष्ट करता है कि "जंगल से बाहर आए हुए लोगों की परिस्थिति भी आज बहुत कठीन है, आय.टी.डी.ए संस्था द्वारा बनाकर दिए गए घर कुछ ही दिनों में गिर जाते हैं, हैंडपंप में पानी नहीं आता है । क्षय(टी.बी), पीलिया, सेरिब्रल मलेरिया आदि बीमारियों से चेंचु लोग जीवन बीता रहे हैं, प्रसववेदना से महिलाओं की मृत्यु होना, पाठशालाओं के बारे में बताना तो ना के बराबर है।"[52]

आदिवासी समूह जंगली जानवरों का उपयोग कर अपनी अजीविका चलाते हैं और वही उनका पेशा है जो सदियों से पीढ़ी दर पीढ़ी अपनाते आ रहे हैं। किन्तु जिस प्रकार जंगल को बचाने के लिए वननीति लागू की गई है उसी प्रकार जंगली जानवरों को बचाने के लिए भी अनेक नियम लागू किये गए हैं। वास्तव में जंगली जानवरों को आदिवासियों से खतरा नहीं है बल्कि गैर आदिवासियों से है जो अपनी विलासिता तथा बहादुरी को साबित करने के लिए बंदूके उठाकर जंगल में चले जाते हैं और शेर, चीता, साबर, हिरन आदि बड़े-बड़े जानवरों का शिकार करते हैं ।

आदिवासी और वन एक दूसरे के पूरक हैं । वन आदिवासियों का पोषण करता है वहीं आदिवासियों ने वन तथा वनपशुओं का भी संरक्षण किया है। चेंचु व्यक्ति पेदा लिंगय्या की बातों में "सर हमारे चेंचुओं को जंगल से बाहर निकाल रहे हैं,वन अधिकारी झोपड़ियां उखाड़ते है

[52] वही, पृ.136

जंगल को छोड़कर चेंचु जाति जीवित नहीं रह सकती सर, जंगल में ही पैदा हुए जंगल में ही बड़े होकर, जंगल में ही गुजर जाते हैं।"[53]

आदिवासी समाज की अस्मिता और अस्तित्व को संकट की स्थिति में ला कर खड़ा किया गया है । आज आदिवासियों जल, जंगल, और जमीन की लड़ाई वैचारिक नारों की लड़ाई नहीं है बल्कि यह उनकी दार्शनिक पृष्टभूमि में मौजूद उनकी चेतना का अभिन्न हिस्सा है । उनकी अपनी पूरी समाज व्यवस्था और अर्थव्यवस्था है जिसे लगातार ध्वस्त किया जा रहा है ।

3.2.2 आर्थिक समस्याएँ :

आदिवासियों की अर्थ व्यवस्था में वस्तु विनिमय पद्धति का प्रचलन आज भी विद्यमान है। वे हमेशा अपने समाज के लोगों से प्रेम और सामूहिकता की भावना रखते हैं । अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आपस में वस्तु विनिमय करते हैं। यह प्रथा उनके अपने समाज के भीतर प्रचलित थी। वे हमेशा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर ही ध्यान देते रहे, किन्तु बाहरी लोगों के सम्पर्क में आने के बाद आदिवासियों की कमजोरी को देखकर वे उन्हें ठगने लगे और आर्थिक रूप से उन्हें अक्षम बनाते रहे । यह स्थिति केवल भारत की ही नहीं बल्कि संसार के अन्य आदिवासी समुदायों में भी विद्यमान है ।

भारत में अनेक आदिवासी जातियाँ जीवन बिता रही हैं । उन आदिवासियों में से आंध्रप्रदेश में फैली हुई चेंचु जाति अत्यंत कठीन दूभर अवस्था में जीवन बिता रही हैं । इस उपन्यास में चेंचुओं की आर्थिक स्थिति न के बराबर है । उन चेंचु लोगों के लिए आर्थिक रूप से जीवन बिता ने का कोई आधार ही नहीं हैं। वे बाहरी समाज के द्वारा शोषित, पीड़ित, होते हैं । तथा उनकी महिलाओं का यौन शोषण होता है ।

[53] मरणम अंचुना, वर्धेल्ली वेंकटेश्वरूलू, पृ.10

आदिवासियों की समस्याओं को सुधारने के लिए सरकार के द्वारा प्रारंभ की गई अनेक योजनाओं को, हमारे राजकीय नेता, रेविन्यु अधिकारी, वनअधिकारी पूंजीपति योजनाओं के नाम पर आदिवासिओं को लूट रहे हैं। और आचरण शून्य सुधार किस तरह से आदिवासियों के लिए निरुपयोगी हो रहे हैं तथा उनकी आर्थिक सम्पत्ति को लूटकर उन्हें आर्थिक रूप से, शारीरिक तथा मानसिक रूप से अत्याचार किया जा रहा हैं।

आज के समय में चेंचु आदिवासियों के लिए उनका क्षेत्र ही उनके लिए सुरक्षित नहीं हैं क्योंकि जंगल में नक्सलवादियों का साथ देने की अफवाह से पुलिस उन पर अति क्रूरता से पेश आती है तथा उनका शोषण करती है। निर्दोष लोग पुलिस की बंदूक की गोलियों से अपनी जान गंवा बैठते हैं। अगर ये आदिवासी जंगल छोड़कर सभ्य समाज में जीवन बिताने जाते हैं तब भी वे सुरक्षित नहीं रहते हैं। उनको आर्थिक रूप से कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। महिलाओं को किसी के घर में मजदूर बनना पड़ता हैं तो वहाँ उन स्त्रियों को यौन शोषण का शिकार होना पड़ता हैं। आर्थिक समस्या के सम्दर्भ में "नल्ल मल्ल पहाड़ों में जीवन बिता रहे चेंचुओं पर पुलिस विष का प्रयोग करते हैं, काँटे को काँटे से ही निकालने का सूत्र अपनाकर चेंचु युवकों को आर्थिक रूप से आश्रय देकर फिर उन्हीं से उनके ही लोगों को उकसाने का कार्य करते हैं, नक्सलवादी और पुलिस दोनों के हमलों में चेंचु जाति जमीन में दफनाई जा रही हैं।"[54] इस तरह चेंचु जाति दोनों तरफ के हमले में अपना प्राण गंवाती जा रही है।

इस प्रकार बड़े पैमाने पर जंगल का दोहन, शोषण होने के कारण आज वन उत्पादों पर निर्भर जनजाति समुदाय का अस्तित्व संकट में पड़ गया हैं। आज आदिवासी क्षेत्र वन विस्तार के कारण समाप्त हो रहे हैं। इसके बावजूद सत्य यह है कि वन आज भी न्यूनाधिक आदिवासियों का पोषण कर रहे हैं। चेंचु आदिवासी अपनी आजिविका के साधनों में लकड़ी, शहद निकालने, गोंद, कंदमूल, जड़ी बूटियाँ आदि वन उत्पादों को प्रमुख श्रोत मानते रहे हैं। जंगल में पाई जाने

[54] मरणम अन्चुना, वर्धेल्लि वेंकटेश्वरुलू, पृ.104

वाली वनोत्पादित उपज में प्रमुख पीपल, सागवान, गुदी, ईमली, महुआ के फूल, ताड़ी, तेंदू के पत्ते आदि को हाट बाज़ारों में आस-पास के क्षेत्रों में विक्रय करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि एक समय था जब चेंचु आदिवासी फल-फूलों से हरे-भरे वनों में जीवन बिता रहे थे लेकिन आज वन अधिकारियों की आकांक्षाओं के कारण आर्थिक रूप से अनेक समस्याएँ उनके सामने खड़ी हुई है। वनों के संरक्षण से ही आदिवासियों के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन को सक्षम बनाया जा सकता हैं। वास्तव में वन आदिवासियों के सच्चे पोषक हैं। वन इन्हें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विभिन्न प्रकार के लाभ पहुंचाते हैं लेकिन आज जंगल को चारों तरफ से हड़पने का षड्यंत्र चल रहा हैं। चेचुं आदिवासियों की परिस्थितियाँ दयनीय होती जा रही हैं। इस सन्दर्भ में उपन्यास की एक स्त्री पात्र नवमणि की बाते देखी जा सकती है "मेरे समय में क्रम से दस साल वर्षा न होने से अकाल पड़ गया खेती नहीं हुई, धान्य नहीं, किसी की शादी नहीं होती थी, भूख के मारे गाँव के लोग पक्षियों की तरह मर गये थे।"[55] यहाँ देखा जाय तो चेंचुओं के जीवन में अकाल भी आएगा तथा बाढ़ भी आएगी लेकिन उन समस्याओं से बचाने के लिए कोई आश्रय देने वाले ही नहीं हैं। अगर सरकार के द्वारा कुछ सहायता मिलती है तो तक नहीं पहुंचती हैं।

इस उपन्यास में देखें तो चेंचु गूडेम में फ़ैल रही क्षय, सेरिब्रल मलेरिया बीमारियों के कारण बच्चों से लेकर वृद्धों तक की मृत्यु होती है। इस संदर्भ में लच्चक्का कहती है "बीमारियों के कारण परिवार को खो जाने बाद बिना पैसों के बचाने की हिम्मत नहीं कर पाती है इसीलिए आठ साल के बेटे को इन बीमारियों से बचाने के लिए जंगल के बाहर सड़क पर छोड़ देती है।"[56] वे लोग बीमारियों से बचकर कितने दिनों तक रहेंगे? उनकी बीमारियों का इलाज होना ही है तो डॉक्टर उनके पास जाने के लिए डरते हैं। आज यह समस्या सभी आदिवासियों की हैं लेकिन इन सब से ज्यादा समस्याएँ चेंचु आदिवासियों को झेलनी पड़ रही हैं। वे आर्थिक रूप से पीड़ित हो रहे हैं।

---

[55] आकुपच्चनि देशम्, पृ.33

[56] वही, पृ.19

इतनी समस्याओं के होते हुए भी चेंचु आदिवासी जंगल से बाहरी दुनिया में आने के लिए सोचते ही नहीं हैं, यादय्या एक चेंचु व्यक्ति से पूछता है कि "जंगल छोड़कर जाओगे क्या ? हम नहीं जायेंगे सर, शहर हमें हड़प लेता है, जंगल हमारी रक्षा करता है, फल-फूल, लकड़ी सब कुछ देता है, हम क्यों जायेंगे।"[57] इतनी समस्यायों का सामना करते हुए भी जंगल छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते हैं। वे ज्यादा शर्माते हैं, तथा बाहरी समाज में जीवन बिताना उनके लिए बहुत कठिन है।

इस उपन्यास में रेविन्यू विभाग के अधिकारियों की चालाकी को रचनाकार ने दिखाया है। जनता से सबसे ज्यादा प्रत्यक्ष संबंध रेविन्यू विभाग का रहता हैं। सरकार द्वारा देने वाले सभी साधनों को ठीक तरह से लोंगों के पास पहुंचाना इस विभाग का प्रधान कार्य है लेकिन इन लोगों का काम है सरकारी धन और प्रजाधन को लूट लेना तथा अपने धन, दौलत को बढ़ाने के लिए अधिक से अधिक लाभ उठाने का काम करते रहते हैं। इस विभाग में चपरासी से लेकर एम.आर.ओ, आर.डी.ओ तक सब भ्रष्टाचारी बन गए हैं। धनवान और भी धन के लिए लूटते ही जा रहे हैं, गरीब और भी गरीब होते जा रहे हैं।

वननीति के कारण आदिवासी जो पहले स्वयं को वनों का मालिक समझते थे अब इनके दास बन गए तथा जंगलों पर वन-विभाग का अधिपत्य स्थापित हो गया है। वनों या आदिवासियों का पारम्पारिक अधिकार अब रियायत में परिवर्तित हो गया है। वननीति के फल स्वरूप जंगलों का अतिदोहन प्रारंभ हो गया, इससे आदिवासियों की समस्याएँ और बढ़ गईं। इनके जीवन में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई वे वनों में जा नहीं सकते, वनोंपज को एकत्रित नहीं कर सकते, अबतक स्वतंत्र रूप से वन पर अधिकार मानने वाले आदिवासी न कानूनों का प्रतिरोध कर सकते हैं, ना ही स्वीकार कर सकते हैं। इस अवस्था में कई प्रसंगों को लेखक ने अपने उपन्यास में चित्रित किया हैं।

[57] स्त्रीवादा पत्रिका, नल्ला-मल्ला अड़वूलों चेंचू मौनाघोषा,कोंडाविटी सत्यावती. पृ.19

3.2.3 राजनीतिक समस्याएँ :

'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में चेंचु आदिवासियों पर राजनीतिक नेताओं द्वारा किस तरह अन्याय, अत्याचार किया जा रहा है, तथा उनको किस तरह से हमारे लोक तंत्र से दूर रखा जा रहा है, इसका विवेचन किया गया है । उपन्यास की स्त्री पात्र मोहिनी कई आंदोलनों में प्रतिभागी रहकर 'स्त्री अधिकार' के लिए लड़ती रही है, और 'स्त्री शक्ति' नामक एक (स्वयंसेवी संस्था) चलाती है । सम्पूर्ण स्वयंसेवी संस्थाओं के द्वारा आयोजित 'नई दुनिया' नामक विशेष कार्यसाधन समिति में भाग लेती है, तब उसकी सोच में बदलाव आता है, इतने आंदोलनों का प्रतिनिधित्व करने के बाद भी वह कहीं न कहीं अपने स्वार्थ की पूर्ति करती है । वेलिगोंडा परियोजना में भी वह अपना स्वार्थ देखती है ।

स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा आज कई क्षेत्रों में सुधारात्मक कार्य चल रहे हैं। मोहिनी भी अपने एन.जी.ओ के द्वारा चेंचु जाति के लोगों को विस्थापित करना चाहती है । परन्तु विस्थापन के उपरान्त उन लोगों का जीवन किस प्रकार हो जाएगा इस पर वह नहीं सोचती है । हमारे देश की यह त्रासदी रही है कि यहाँ परियोजनाएँ तो बनाई जाती हैं, लेकिन उनके फायदे देखे जाते हैं, परन्तु उनके कारण उत्पन्न हो रही समस्याओं पर पर्दा डाला जाता है । चेंचु आदिवासी वे लोग हैं जो अपनी जल, जंगल, जमीन के प्रति अत्यंत लगाव रखते हैं । वे मोहिनी के प्रति एक ऐसे व्यक्ति का भाव रखते हैं जो उनकी चीजों से उन्हें दूर करना चाहता है । पेदा मंतय्या उपन्यास का एक पात्र है जिससे उपन्यास की कथावस्तु आगे बढ़ती है । वीरा जब चेंचु जाति के बीच पहुंचता है तब वीरा की पहली मुलाक़ात पेदा मंतय्या से ही होती है । वह वीरा मुख्यमंत्री और परियोजना के बारे में बताता है जिस पर पेदा मंतय्या वीरा से पूछता है कि "मुख्यमंत्री कौन? आपके जैसे बहुत लोगों को देख चुका हूँ? भूख से पशु-पक्षियों की तरह मरे जा रहे चेंचु आदिवासियों को जमीन नहीं, धान्य नहीं, हमारे लिए कोई मुख्यमंत्री नहीं है, हमारा

देश नहीं हैं। हमारे लिए कोई नहीं हैं।"[58] यहाँ स्पष्ट होता है कि इन लोगों के लिए बनाई जाने वाली परियोजनाएं, कार्यक्रम आदि की इनको कोई जानकारी नहीं है । इन लोगों को भारतीय संविधान में अनुसूचित जनजाति के नाम से शामिल तो किया गया है परन्तु इसकी कोई जानकारी इन लोगों को नहीं है क्योंकि इनको कभी किसी तरह की जानकारी देने तथा उनको सभ्य समाज का हिस्सा या अंग बनाने की कोशिश नहीं की गई है । इस कारण इनका मानसिक तौर पर विकास नहीं हो पाया है इसलिए वे लोग सरकारी विभाग तथा कार्यकर्ताओं के प्रति निराशा का भाव रखते हैं । इनका यह भाव उन राजनैतिक नेताओं के कारण भी उत्पन्न हुआ है जो इन पर विकास के नाम पर अत्याचार करते हैं । उनके पास जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को धोखा देनेवाले ही समझते हैं । एक चेंचु व्यक्ति कहता है कि "बहुत लोग ऐसे ही आते हैं, ऐसे ही हमें बाते सुनाकर उनके काम पूर्ण करके हमें धोखा देकर चले जाते हैं ।"[59] वीरा चेंचुओं को उनके निवास स्थान से विस्थापित करने के लिए आज की राजनीति के बारे में,प्रशासन के बारे में, वन अधिकारियों की आकांक्षाओं के बारे में बताता है जिस पर एक चेंचु व्यक्ति कहता है कि "ये बाते आय.टी.डी.ऐ के अधिकारी सुनाते ही रहते हैं कुछ और है तो कहो, हम बाहर तो नहीं, लेकिन यहीं जंगल में या और अंदर ही जायेंगे आप के अधिकारी से कह दो।"[60] अनेक त्रिकोणीय प्रयत्न करने पर भी वह जंगल नहीं छोड़ते क्योंकि वे परम्परागत जंगल में अपना रिश्ता गहरा बना कर जीवन बिता रहे है ।

'वेलिगोंडा परियोजना' के बनाने पर होने वाले अवरोधों के कारण चेंचुओं के लिए मार्कापुरम के निकट बनाया गया 'पुनर्वास केंद्र' में उन्हें भेजने का निर्णय अधिकारी लेते हैं । इस परियोजना के विरोध में चेंचु गूडेम के लोग जिला अधिकारी कार्यलय के सामने आंदोलन, भूख हड़ताल करते हैं । इस पर राजनेता अलल सुंदरम कहता है "ये भूख हड़ताल क्या है? इन लोगों

[58] वही, पृ.43

[59] मरणम अन्चुना,वर्धेल्ली वेंकटेश्वरुलु, पृ.48

[60] आकुपच्चनि देशम्, पृ.64

के लिए एक फैशन हो गया।"[61] यहाँ देखा जाय तो ये आन्दोलन, भूख हड़ताल केवल आदिवासियों के मन की तसल्ली के लिए हैं, इन आन्दोलनों से वास्तव में कुछ होता ही नहीं । इससे उनकी समस्या का परिष्कार ही नहीं होता है । चेंचु आदिवासी दिन-रात अनशन पर बैठते हैं । एक बार रात के समय "पुलिस उनपर हमला करती है एक व्यक्ति के दो हाथ पीछे बाँध कर उसे सड़क पर दूर तक खिंचकर ले जाते हैं।"[62]

यहाँ स्पष्ट है कि समाज की सुरक्षा के लिए रखे गये पुलिस अधिकारी भी पैसे या धन के लालच में अपने कर्तव्यों का पालन तक ठीक से नहीं करते हैं । वह शासन के नहीं बल्कि उस व्यक्ति के नौकर बनकर बैठ जाते हैं, जो उन्हें भ्रष्टाचारी बना रहे हैं । चेंचुओं पर किया गया यह अत्याचार शासन के व्यवहार को स्पष्ट करता है ।

लेखक ने 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में चेंचुओं की राजनैतिक समस्याओं को उजागार किया है । आदिवासी आरक्षण की सुविधा से अगर बड़े-बड़े अफसर, संसद के सदस्य या उच्च पदों पर पहुंच भी जायें तो भी वहाँ नाम मात्र के लिए ही होते हैं । उन लोगों को किसी तरह से अपने वश में रख कर दबाया जाता हैं। इस उपन्यास में सरकारी प्रशासन तन्त्र के अंतर्गत तहसीलदार, पुलिस कर्मचारी, जिला अधिकारी, आदि रहते हैं । ये सभी जमींदार पूंजीपति वर्ग का समर्थन करते हैं और चेंचु आदिवासियों पर अन्याय, अत्याचार करते हैं ।

3.2.4 सांस्कृतिक एवं धार्मिक समस्याएँ :

आदिवासी संस्कृति की अपनी विशेष पहचान है । इस संस्कृति के अंतर्गत् जाति, समानता, भाईचारे की भावना, उदात्त विचार और सबसे विचित्र लक्षण यह है कि प्रकृति के कोख से जन्म लेकर उससे विशिष्ट निकटतम संबंध बनाती हैं । इसमें प्रकृति प्रेम विद्यामान हैं, जो अन्य संस्कृतियों से इन्हें अलग एवं विशिष्ट पहचान प्रदान करता हैं । आदिवासी जीवन में

[61] वही, पृ.80

[62] आकुपच्चनि देशम्, पृ.84

मनुष्य का जीवन प्राकृतिक एवं साधारण हैं "संस्कृति वह जटिल इकाई है जिसके अंतर्गत् आचार-विचार, विश्वास, रीति-रिवाज विधि-विधान एवं परम्पराएँ आती हैं । इसके अंतर्गत सभी समानताएं एवं आदते शामिल हैं।"[63] वास्तव में संस्कृति जीवन का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में समाया रहता हैं जिसमें हम जन्म लेते हैं । अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं वे भी हमारी संस्कृति का अंग बन जाते हैं ।

धर्म अलौकिक शक्ति पर विश्वास का नाम है। धर्म आस्था से संबंधित धारणा है। भारतीय वन्य जातियों में धर्म पर आस्थाओं की अनेक मान्यताएं प्रचलित हैं। धार्मिक आस्थाएं मनुष्य के मन मस्तिष्क में आत्मविश्वास का भाव जगाती हैं। किसी समुदाय को आत्म सम्मान के साथ जीने के लिए आत्मविश्वास परम आवश्यक हैं। इसी आत्मविश्वास प्राप्ति हेतु आदिवासी समाज ने प्रकृति को असीम शक्ति के रूप में स्वीकार कर लिया है। यह समाज प्रकृति के आंचल में रहता है। प्राकृतिक आपदाओं तथा प्राकृतिक क्रिया कलापों को ये ईश्वरीय शक्ति के रूप में देखते हैं। इनके देवी-देवता एवं पूजा-पर्व, धार्मिक अनुष्ठान प्रकृति से संबंधित हैं। इन सभी आदिवासियों के देवी-देवता भिन्न-भिन्न होते हैं। इनका धार्मिक पर्व बिना बलि का हो ही नहीं सकता है। प्रकृति से अटूट संबंध बनाना केवल आदिवासी ही जानते हैं। वे प्रकृति को अपनी माँ तथा आकाश को पिता मानते हैं। उनके दिन की शुरुआत प्रकृति से होती हैं और रात की शुरुआत भी । जीवन का प्रारंभ पेड़ पक्षियों एवं लहराते पौधों तथा हवाओं के झोंके से शुरू होता हैं और जीवन का अंत उसी प्रकृति को शामिल हवाओं के साथ निरस्तब्ध वन में होता हैं ।

चेंचु आदिवासी की संस्कृति, धार्मिक आस्थाएं परंपरा से विद्यमान रही हैं । इन लोगों में दैवभक्ति अधिक रही है, स्त्री-पुरुष देवी-देवताओं की पूजा-पाठ करते हैं। शिव के परम भक्त माने जाते हैं । शिव के अवतार श्रीशैलम मन्दिर में स्थित मल्लिकार्जुन स्वामी को मल्लय्या के नाम से जाने जाते हैं तथा आदि शक्ति को मैसम्मा, पेद्द्म्मा के नाम से आराधना करते हैं । विवाह-पर्व,

[63] आदिवासी कौन, रमणिका गुप्ता, पृ. 37

त्यौहार आदि कार्यों में बलि दी जाती हैं। बली के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता हैं। चेंचु आदिवासी समाज में देवी-देवता एवं पूजा-पर्व धार्मिक अनुष्टान प्रकृति से संबंधित हैं। शराब, खरगोश का मांस नैवेध्य के रूप में भगवान को चढ़ाया जाता है। चेंचु आदिवासी अपना एक समुदाय बनाकर कार्य करते हैं।

सामान्यत: चेंचु आदिवासी क्रूर एवं कठोर देवताओं को प्रसन्न करने के लिए समय-समय पर विविध प्रकारों की आराधना एवं उपासना करते रहते हैं। इन्हें निरंतर इन क्रोधी देवताओं का भय बना रहता हैं। प्रत्येक अनिष्ट के उपस्थित होने पर ये आदिवासी ओझा के पास दौड़ जाते हैं। ये धार्मिक नेता किंचित चिन्तन के पश्चात किसी देवता का संकेत करते हैं और उसके क्रोध से बचने के लिए बलि आदि की व्यवस्था कर संतुष्ट होते हैं। यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि ये देवी-देवता स्वप्नों के माध्यम से आने वाले संकटों की सूचना देते हैं और पारिवारिक सुख-शांति के निमित्त कुछ विशिष्ट पूजा करने की प्रेरणा भी देते रहते हैं। इस सन्दर्भ में पेदा मंतय्या उपदेश देता है कि "स्वप्न चेंचु जाति को रक्षण देने वाली शक्ति है, स्वप्न से ही कल आने वाले संकट को देखते हैं।"[64] चेंचु आदिवासियों की संस्कृति एवं धार्मिक आस्थाएं आज बाहरी समाज के द्वारा दोहन शोषण हो रहा है। बाहरी समाज के द्वारा चेंचु जाति समाप्त होने के साथ-साथ उनकी संस्कृति, धर्म भी समाप्त हो रहा है। आदिवासी समाज की जीवनावश्यकताएँ सामान्य और सीमित हैं। वस्तु, धन संग्रह की भावना इनकी संस्कृति में नहीं पायी जाती है। ये प्रकृति के सहचर एवं पुजारी है। इनका धार्मिक स्थल कोई मन्दिर, मस्जिद या विशिष्ट स्थान न होकर खुला आकाश, खुली प्रकृति होती हैं। चेचुं आदिवासियों की संस्कृति एवं धार्मिक आस्थाएं आज बाहरी समाज के द्वारा नष्ट किए जा रहे हैं जहाँ स्वतंत्र रूप से ये अपनी उपासना, आरधना, पूजा-पाठ कर सकते हैं। आकाश और धरती की यह व्यापक संरचना ही इनका मन्दिर, गिरजाघर है। उपन्यास में एक पात्र बय्यन्ना श्रीशैलम मन्दिर में पूजा-पाठ

[64] आकुपच्चनि देशम्,पृ.49

करता था। वह चेंचु आदिवासियों के साथ हो रहे अन्याय को देखकर निस्सहाय स्थिति में खेतों में बैठे हुए आदिवासियों के पास आता है । वह उपदेश देता है, साथ में लाए हुए टोकरी में से शराब की बोतल और खरगोश का मांस निकाल कर उनको देते हुए कहता है "ये भगवान का प्रसाद है, पेट भर पीओ और खाओ, उसके साथ काली मिर्च निकाल कर दासरी चिना मंतय्या के हाथों में देते हुए कहता है कि उसे जमीन में उगाओं सब ठीक हो जाएगा।"[65] चेंचुओं की समस्यायों को जानकर उन लोगों में हिम्मत लाने के लिए वहाँ भगवान ही एक व्यक्ति का रूप धारण करना उपन्यास में लेखक ने दिखाया हैं । वह उनको प्रोत्साहित करता है । काली मिर्च आन्दोलन का संकेत माना गया है कि चेंचु जाति कभी नहीं समाप्त होगी, हिम्मत से अपनी जाति को कायम रखने का उपदेश देता हैं ।

आदिवासी संस्कृति एवं प्रकृति में एक गहरा आत्मीय संबंध है । तभी तो प्रकृति प्रदत्व वृक्षों को आदिवासियों ने अपने जीवन से जोड़ लिया है। जबकि सभ्य कहे जानेवाले विकसित संस्कृति से प्रकृति का संबंध संघर्ष मूलक रहा है । फलत: वहाँ प्रकृति का दोहन उच्छेदन विनाश है । अब रक्षण का विचार महज भौतिक उपयोगिता वादी सार का है। वर्तमान में प्रकृति से इनका संबंध केवल बाहरी वैज्ञानिक विकास, औद्योगिक और वाणिज्यिक ही हैं। धर्म के मामले में आदिवासियों के प्रति सदा सौतेला व्यवहार हुआ है। भारतीय जनगणना की सूची में देखा जाय तो आदिवासियों की अपनी धार्मिक पहचान है ही नहीं । भारत सरकार अच्छी तरह से जानती है कि आर्यों के पहले से आदिवासी सभ्यता एवं संस्कृति यहाँ विकसित, तथा फल-फूल रही थी। सभी इतिहासकार भी जानते हैं, फिर भी कुछ इतिहासकारों ने अनदेखा कर आदिवासियों के साथ घोर अन्याय किया है ।

देश में कुछ धार्मिक आन्दोलन आदिवासियों के विकास के साथ जुड़े हुए हैं । इनमें इसाई आन्दोलन प्रमुख है "19वी सदी के दूसरे दशक में ईसाई धर्म प्रचारकों ने जनजातीय क्षेत्रों में धर्म

[65] वही, पृ.141

परिवर्तन के उद्देश्य से पदार्पण किया । इसके लिए इन लोगों ने सामाजिक सेवा, शिक्षा स्वास्थ्य की सुविधा को उद्देश्य पूर्ति का साधन बनाया । सन् 1831 में मेघालय की खासी जनजाति पहले-पहल विदेशी धर्म से प्रभावित हुई । तदोपरांत 1850 में नागपुर के उराँव तथा 1880 में मध्यप्रदेश के भैलो में धर्म परिवर्तन के साथ कल्याणकारी कार्य मिशनरियों ने चलाया । 1950 तक ईसाईकरण की प्रक्रिया तीव्रतर रही।"[66] विगत तीन दशकों में इस धर्म आन्दोलन के विरुद्ध कुछ जनजातियाँ सजग हो चली हैं । तथापि ईसाईयों ने जो कार्यक्रम चलाया है उसका प्रभाव सुदूर आदिवासी क्षेत्रों में पड़ा, इसे नकारा नहीं जा सकता आदिवासियों में ईसाई का आशय शिक्षा तथा आर्थिक सुविधा प्राप्त करना ही है । स्वयं आदिवासी इसे स्वीकार करने लगे हैं । इस आन्दोलन से ईसाई और गैर-ईसाई जनजाति के बीच एक खाई बन गई है। अतः इस आन्दोलन को आदिवासी समस्याओं का पूर्ण हल नहीं माना जा सकता हैं । धार्मिक आन्दोलन में हिन्दू या इस्लाम धर्म प्रचारकों की भूमिका नगण्य है । हिन्दू धर्म एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है । इसी प्रचार के माध्यम से लोगों को प्रेरित नहीं किया जा सकता है । चूँकि अनेक कृषक आदिवासियाँ पड़ोसी हिन्दू जातियों के सम्पर्क में सैकड़ों वर्षों से हैं, अतः उनमें आचार विचारों का परस्पर आदान-प्रदान होता रहा है। आदिवासी जीवन पर ईसाईयत के सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव से संबंधित अनेक प्रसंग हुए हैं । साधारणतया भूख सदैव नयी होती है । मनुष्य को प्रतिदिन इस नयी भूख का सामना करना पड़ता है । जहाँ एक वक्त भी खाने के लिए अन्न प्राप्त न हो, भूखे मर रहे हो तो मनुष्य क्या करें? स्वाभाविक ही वह अपना धर्म परिवर्तन करने में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं करेगा, यही विडम्बना है, भारतीय आदिवासियों की और इन्ही परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए मिशनरियों ने जी जान लगाकर आदिवासियों की कमजोरी को देखकर इन्हें धर्म परिवर्तन कराए हैं। यही खाने-पीने और सुख-सुविधा के मोह से आदिवासियों को उत्तेजित कर धर्म परिवर्तन करते रहते हैं । कुछ सन्दर्भ में पादरी लोग आदिवासियों की विवशता का भी फायदा उठाते हैं । उन्हें इमोशनल ब्लैकमेल करते हैं ।

[66] जनजातीय भारत डॉ.ए.आर.एन.श्रीवास्तव, पृ .93-94

इस तरह से आदिवासियों की समस्या धर्म के कारण और गैर आदिवासी इनके रीति-रिवाज को अंधविश्वास के रूप में मानने पर वह संस्कृतिक और धार्मिक आस्थाएं धीरे-धीरे समाप्त होने लगी हैं।

3.2.5 विस्थापन की समस्या :

आदिवासियों की मुख्य समस्या विस्थापन की रही है । इनका पलायन और विस्थापन सदियों से होता रहा है और आज भी हो रहा है। आदिवासियों के जंगलों, जमीनों, गाँवों, संसाधनों पर कब्जा कर उन्हें दर-दर भटकने के लिए मजबूर करने के पीछे मुख्य रूप से सरकारी व्यवस्था ही कारण भूत रही है। वे केवल अपने जंगलों संसाधनों या गाँवों से ही बेदखल नहीं हुए बल्कि मूल्यों नैतिक अधिकारों, जीवन शैलियों, भाषाओं एवं संस्कृति से भी बेदखल कर दिए गए हैं।

'आकुपच्चनि देशम'उपन्यास में लेखक ने चेंचु आदिवासियों की जीवन गाथा को वर्णित किया है नल्ल मल पहाड़ों में जीवन बिता रहे चेंचु आदिवासियों के निवास स्थान में वेलिगोंडा बाँध परियोजना बनाने के लिए स्वयंसेवी संस्था राजनेताओं द्वारा इन आदिवासियों को उनके निवास स्थान से विस्थापित करने के लिए उनके ऊपर बल प्रयोग किया जाता है उनको उसके स्थान से हठाने के लिए मजबूर करना, इन कारणों से उनका जीवन निस्साहाय स्थिति में पड़ जाना इन सभी समस्याओं को लेखक ने उपन्यास में चित्रित किया है।

वेलिगोंडा बांध परियोजना विदेशी संस्थाके आर्थिक सहयोग से बनाई जानेवाली परियोजना है। यह परियोजना जितनी विकासोन्मुख थी उतनी ही चेंचु जाति के लिए घातक थी। परन्तु बुद्धिजीवी लोग इस परियोजना के चलते चेंचु गूडेम में बाढ़ आने तथा उसके विनाश का अनुमान लगाते हैं। जिस कारण उन्हें वहाँ से विस्थापित किया जाना आवश्यक था। इस काम के लिए मोहिनी वीर को चुनती है क्योंकि वह जानती है कि वीरा एक आदिवासी है और

वहाँ के लोगों को अच्छी तरह समझता भी है । परियोजना का कम पूरा होने के बाद उसे दस लाख रुपय मिलेंगे, अपने इस स्वार्थ के लिए वह वीरा को उस क्षेत्र में भेजती है । वीरा इस बात पर विचार करते हुए मन ही मन बड़बड़ा ता है कि "एक महत्वपूर्ण उद्देश्य से बनाये जानेवाला काम एक व्यापार के रूप में किया जा रहा है ।"[67] यहाँ पर देखा जा सकता है कि व्यक्ति कितना भी समाजसुधारक क्यों ना हो पैसा, माया मोह उसे गलत रास्ते पर लेकर जाते हैं, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष । भूमंडलीकरण की इस अंधाधुंध दौड़ में हम अपने ही लोगों के साथ बुरा कर रहे हैं। इसका प्रतीक स्वयं मोहिनी और वीरा बन जाते हैं । परन्तु वीरा चेंचुओं की यथार्थ स्थिति को देखकर बदल जाता है और उनकी भाषा, संस्कृति, रीति-रिवाजों का आदर करने लगता है ।

औध्योगीकरण सिंचाई परियोजनाओं एवं थर्मल पावर स्टेशनों के निर्माण के लिए सरकार ने निजी व सरकारी संस्थाओं के लिए भारी मात्रा में जमीनों का अधिग्रहण किया और लाखों लोग विस्थापित कर दिए गए । सिंचाई के लिए बनाए बांधों के कारण हजारों गाँव डूब गए, इसी सन्दर्भ में उपन्यास की स्त्री पात्र नवमणि कहती है कि "वेलिगोंडा बांध परियोजना पूरी होने पर गोट्टिपडिया गाँव के साथ और पन्द्रह गाँव तथा दो चेंचु गूडेम(गाँव) जलमय हो जा येंगे ।"[68] यह स्पष्ट होता है कि विकास के नाम पर चेंचु आदिवासियों को उनके निवास स्थान से हठाना, उनके क्षेत्र में बनाये जा रहे वेलिगोंडा बाँध परियोजना के कारण बाढ़ आनेसे उनके गाँव पुरे पानी में डूब जाना तथा उस समय उन आदिवासियों को की जाने वाले सहायता तो ना के बराबर ही होती है । बाढ़ आनेके कारण खुद ही अपना सामान लेकर निकल जाते है अगर पुनर्वास केंद्र में भेजते भी है तो वहाँ कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है क्योंकि चेंचु आदिवासी जंगल से गहरा रिश्ता बनाकर अपना जीवन बिताते रहते है, इनका पेशा केवल भोजन अन्वेषण करना, जंगल में मिले कंदमूल, फल-फूल तथा छोटे-छोटे जानवरों का शिकार करते हुए अपनी आजीविका चलाते है ।

---

[67] आकुपच्चनि देशम्, पृ.19

[68] आकुपच्चनि देशम्, पृ. 31

"स्वतंत्रता के पाश्चात आरम्भ हुयी विकास की प्रक्रिया से जनजातियों के हितों पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। सार्वजनिक अथवा निजी क्षेत्रों की परियोजनाओं में बड़ी मात्रा में निवेश से उनका विस्थापन हुआ तथा उनके क्षेत्रों में पर्यावरणीय अवनति हुयी। असंतुलित पुनर्वास से वे शहरी औद्योगिक यायावर बन गए तथा शहरीकरण कर कारण भूमि हाथ से निकल जाने के कारण वे गरीबी के शिकार हो गए। शहरों के समीप के अनेक पुराने जनजातीय गाँव झोपडपट्टी बन गए हैं। जनजातीय आबादी में विच्छिन्नता बढ़ गयी तथा कई इलाकों में एकरूपता में व्यवधान पड़ा है।"[69]

विकास की अनेक योजनाओं के कारण सरकार ने बड़े पैमाने पर प्राकृतिक संसाधनों जैसे जंगल, तालाब, जमीन, नदियों आदि का अधिग्रहण करना प्रारंभ किया। सिंचाई के लिए बनाए गए बांधों के कारण हजारों गाँव डूब गए हजारों एकड़ जमीन खप गई। जिसके परिणामस्वरूप एक बहुत बड़ी आबादी को अपने घर, परिवार, जमीन एवं जीविका के साधनों से वंचित होकर विस्थापन के लिए मजबूर होना पड़ा। विशेषतः मशीनीकृत खनन प्रणाली के चलते खेत-दर खेत उजड़ गए और जंगल दर जंगल कट गए। भूगर्भ परियोजनाओं के कारण जमीन भी धंस गई, जिनकी जमीनें ली गई वे भूमिहीन घर विहिन हो गए और जो भूमिहीन उन जमीनों पर आश्रित थे अथवा गाँव में अन्य रोजगार करते थे लेकिन पुनर्वास की कोई वैकल्पिक योजना ना होने के कारण सब के सब बेरोजगार हो गए। एक परियोजना को पूरी तरह से सफल भी नहीं होने देते हैं और दूसरी योजना के बारे में सोचने लगते हैं आदिवासियों को न्यायोचित मुआवजे की खातिर दलालों और वकीलों की शरण में जाना पड़ता हैं जो उन्हें अलग से लुटते हैं "एक लंबे अंतराल के बाद भी जब आदिवासी राष्ट्रीय मुख्य धारा में नहीं जुड़ पाये तो शासक वर्गों की यह धारणा बन गयी कि आदिवासी परम्परावादी और अविकसित ही रहना चाहते हैं। इस धारणा के तहत उन्हें जंगली, गँवर, मुर्ख इत्यादि कहकर सम्बोधित किया गया।...वे नहीं चाहते कि

[69] झारखंड इन्सैक्लोपीडिया, खंड-3, पृ. 49

समाज के नैतिक मूल्यों से युक्त सुंदर परम्पराओं का विनाश हो और आधुनिकता के नाम पर किसी भी मूल्य को स्वीकार कर लिया जाय । वे मनुष्य और प्रकृति के संतुलन को समझते हैं, इसलिए ऐसा नहीं चाहते कि एक तरफा विकास की अवधारणा को स्वीकार कर प्रकृति का संतुलन बिगाड़ दें । यह आदिवासी समाज का सर्वश्रेष्ठ मानक है ।"[70]

यह स्पष्ट है आदिवासियों का जिन वन संपत्तियों पर परंपरागत अधिकार को कानून बनाकर सरकार के अंतर्गत कर लिया जिससे सदियों से बसे सैकड़ों आदिवासी गाँव उजाड़ दिए गये साथ ही साथ उन्हें उनके देवी-देवता तथा संस्कृति से भी वंचित कर दिया गया उन समस्याओं के विरुध्द आदिवासी लड़ रहे हैं। ऐसी स्थति में उन्हें पूंजीपति वर्ग के लोग मीडिया का सहरा लेकर नक्सलवादी घोषित कर दिया जा रहा है उन आदिवासियों को हथियार उठाने के लिए मजबूर करके उनका एनकाउंटर किया जा रहा है ।

3.2.6 स्त्री समस्या :

आदिवासी महिलाएं आदिवासी समाज की रीढ़ की हड्डी होती हैं । पुरुषों से किसी भी मायनें में कम नहीं है बल्कि उनसे भी अधिक साहस का काम कर दिखाती है । पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करती है । आदिवासी साहित्य को देखेंगे तो स्त्री ने अपनी बड़ी तादात में उपस्थिति दर्शाई है । खेत में मेहनत करती है, श्रम, शिकार हो या लड़ाई की बात हो हर समय स्त्री पुरुषों के साथ उपस्थिति रहती है । अगर भारतीय समाज एवं संस्कृति के हवाले से देखें तो स्त्री के साथ 'माता', 'भूमाता' जैसे विशेषण लगाए जाते है । उसकी पूजा की जाति है । लेकिन आज स्त्री की स्थिति इतनी तनाव ग्रस्त है कि उनके प्रति पुरुषों का व्यवहार एक तरफ माता आदि कहकर पूजते है तो दूसरी ओर उसका अस्तित्व नष्ट किया जा रहा है । भ्रूणहत्या, बलात्कार, अन्याय, अत्याचार कई अमानुषिक उनके साथ हो रहा है। सदियों से ब्रिटिशों,

[70] प्रभाकर किर्की, विकासके नाम पर विनाश एवं विकास के सुझाव, पृ. 47-48

जमींदारों, साहूकारों द्वारा उनका शारिरीक शोषण होता आया है। हर बार बलात्कार अत्याचार और उपेक्षा की शिकार होती आयी है । हमेशा उसके विचारों को दबाया जाता रहा है।

'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में लेखक ने स्त्री समस्या को दिखाया है । "सपना स्वयंसेवी संस्था में कार्यकर्ता थी, उसका उद्देश्य आदिवासियों के अधिकार के लिए लड़ना, तथा घरेलु हिंसा से पीड़ित महिलाओं की सहायता करना लेकिन सी.आर.पी.एफ जवान का मानना था कि नक्सलवादियों के लिए पत्र-व्यवहार करती है इसी कारण जवान दिन-दहाड़े उस पर बलत्कार करते है ।"[71] यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियों के विचारों को दबाया तथा उनके प्रति पुरुषों का व्यवहार कम आंखना तथा हीन भाव की स्थिति दिखाई देती है । आज भी समाज में कई जगह स्त्रियों के साथ यह घटनाएँ हो रही है । उसने अपने अत्याचारों का विरोध समय-समय पर किया है तथा अपने अधिकार, इज्जत, आत्मसम्मान को बचाने के लिए उसने हथियार भी उठाए है ।

आदिवासी स्त्रियों ने पहले से ही अपने हक और अधिकारों के लिए पुरुषों के साथ मिलकर समाज और शासकों का सामना किया है तथा समय-समय पर उसने हथियार भी उठा लिए है । कवयित्री निर्मला पुतुल ने अपने कविताओं द्वारा स्त्री अस्मिता के प्रश्नों को हाशिए पर ढकेला गया है वह अपनी पीड़ा का प्रतिरोध करती हुयी चेतावनी देती है । वह कहती है-"आज की तारिख के साथ/ की गिरेगी जितनी बूंदे लहु की पृथ्वी पर/ उतनी ही जनमेंगी निर्मला पुतुल/ हवा में उठ्ठी बंधे हाथ लहराते हुए ।"[72] स्त्रियों को सदियों से चार दीवारों, चूल्हा, घर, गृहस्ती तथा बच्चों को संभालने तक सीमित रखा गया था । प्रत्येक अवसरों पर उसकी चाहत को दबा दिया गया था । वास्तव में उसे चाहने लायक रखा ही नहीं गया । था कभी उसके शरीर को आघात पहुंचा कर अनंत काल तक सहन करने के लिए छोड़ दिया गया था । आर्थिक समस्या

[71] आकुपच्चनि देशम्, पृ.25

[72] नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, पृ.91 भारतीय ज्ञानपिठ, सं 2005

तथा अत्याचार से वह इतनी पीड़ित हुई कि उसे दर्द को भीतर ही भीतर सहते-सहते उस दर्द का लावा बन गया । पुरुषों की नजर में स्त्री एक भोग्य वस्तु रही है । पुरुषों ने स्त्री को इसके परे जाकर कभी समझा ही नहीं, ना ही स्त्री होने का दर्द कभी महसूस किया।

आदिवासी स्त्रियाँ परिश्रमी होती हैं । वे पुरुषों के कंधों से कंधा मिलाकर ही नहीं बल्कि उससे भी ज्यादा परिश्रम करती है । वह खेतों में काम करती हैं पत्तल, चटाई, पंखा, झाड़ू बनाकर बाज़ार में बेच कर अपने परिवार की अजीविका चलाने में योगदान देती है । चेंचु आदिवासियों में स्त्रियाँ पुरुषों के साथ कामों में भागीदारी होती है । पुरुषों के साथ शिकार करना, महुए चुनना, झोपड़ी बनाने में भी भागीदरी होती है । सभ्य कहे जाने वाले लोग आदिवासी स्त्रियों को एक बाजारू समझते है । इन आदिवासियों से घृणा करते है । उन्हें नीचा दिखाते है । उनके अनघड शरीर का मजाक उड़ाते है । जंगल में मिलने वाले फल-फूल को बेचकर अपनी अजीविका चलाने वाली स्त्रियाँ जनमानस के समक्ष प्रस्तुत होती है जो हमारे समाज में आर्थिक स्तर पर कितनी विषमता व्याप्त है, जो सम्पन्न वर्ग है जैसे महाजन, साहूकार व अन्य मौकापरस्त लोग वे आदिवासियों पर गिध्द दृष्टि रखते हुए उनका शोषण करते हैं । स्त्रियों के श्रम को कम आंकने की भूल हमारा पुरुष समाज सदैव करता आया हैं । आज समाज में बाजारीकरण पूर्णत: व्याप्त हो चूका है हर चीज, अब बिकाऊ चीज बन चुकी है । बाज़ार का अभिन्न अंग है विज्ञापन अब विज्ञापन सभी सीमाओं को तोड़ कर आगे बढ़ रहा है । महिलाओं में अधिकांशत: असंगठित क्षेत्र का हिस्सा होने, श्रम, कानून की सुविधाओं से वंचित रहने और जीवन के कई आयामों के प्रति असुरक्षाबोध होने की वजह से काम काजी जगहों पर उनके यौन शोषण के रास्ते खुल जाते है । भूमंडलीकरण की संरचना में नियति उन्मुख उद्योंगो सेज और सेवा क्षेत्रों में इस तरह के शोषण बढ़ा रही है ।

3.2.7 पर्यावरण से संबंधित समस्या :

आधुनिकिकरण के दौड़ में विकास के नाम पर पर्यावरण को तो जितना प्रदूषित बना रहे है उतना ही जन जीवन में समस्याएँ तथा बीमारियाँ बढ़ती जा रही है। मानव ने अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए वन, जीव, जगत, प्राकृतिक संसाधनों का अति दोहन-शोषण करना शुरू कर दिया है। जिसका परिणाम आदिवासियों पर पड़ रहा है। प्रकृति पर अपनी विजय के अहसास ने मनुष्य को इतना उन्मादी बना दिया है कि उसने प्रकृति का ही विनाश करना शुरू कर दिया है। अगर वह प्रकृति का इसी तरह विनाश करता गया तो वह दिन-ब-दिन अपना विकास असंभावी हो जायेगा। पर्यावरण का सवाल अब मनुष्य के जीवन और प्रकृति से कहीं ज्यादा व्यवस्था और सत्ता का सवाल बनें गया है।

आज़ाद भारत में बनी पहली सरकार ने विकास का रास्ता प्रारंभ किया जो मॉडल उसने अपनाया जिसे बाद की सरकारे भी थोड़े-बहुत उलटफेर के साथ अपनाती गयी उसके चलते पर्यावरण का अंधाधुंध विनाश हुआ बड़े बाँध, बड़ी योजनाएँ और परियोजनाएं बनाई गई। 'आकुपच्चनि देशम' उपन्यास में लेखक ने चेंचु आदिवासियों की जीवन स्थिति को यथार्थ रूप में चित्रित किया। नल्ल मल पहाड़ों में जीवन बिता रहे चेंचु आदिवासियों के निवास क्षेत्र में बनाये जा रहे वेलिगोंडा बाँध परियोजना के कारण उससे उत्पन्न होने वाली अनेक समस्याओं से चेंचु आदिवासियों पर दुष्प्रभाव डाला जा रहा है। जिससे पर्यावरण प्रदूषित होना तथा उस प्रदुषण के कारण उनके क्षेत्र में अनेक बीमारियाँ जैसे क्षया, मलेरिया, सेरिब्रल मलेरिया आदि बीमारियों को झेलते हुए जीवन बिता रहे है। ये आदिवासी केवल जंगलों पर निर्भर रह कर अपनी अजीविका चलाते रहते है। प्रकृति से इतना ही लेते है जितनी उनके जरुरत होनी है। उपन्यास में एक स्त्री "अंकालम्मा जंगल से जड़ी-बूटी मुलिक चीजे औषदीय पत्ते लाकर छोटी-छोटी बीमारियों के इलाज के लिए दवाइयां तैयार करती थी।"[73] स्पष्ट है कि विकास के नाम पर

[73] आकुपच्चनि देशम्, पृ.106

जंगलों का अंधाधुंध कठाई हो रही है जिससे आदिवासी इन सभी चीजों से दूर होने लगे लेकिन आदिवासी इन प्राकृतिक संपदाओं के संरक्षण के प्रति ईमानदार रहे हैं।

'आदिवासी दुनिया' में हरिराम मीणा प्रकृति के सन्दर्भ में लिखते हैं कि "आदिवासियों की परंपरा में जंगलों को उजाड़ना नहीं बल्कि उनकी हिफाजत करना रहा है। हरे वृक्षों को काटना पाप माना जाता रहा है। औषध-वनस्पतियों के पौधों को समूल उखाड़ना प्रकृति की सत्ता के विरुध्द अपराध माना गया है। अत्यावश्यक होने पर कोई हरी टहनी काटनी पड़े तो उससे पहले वृक्ष से क्षमा याचना करने की प्रथा आदिवासियों में रही है। इमारती लकड़ी के नाम पर पत्तों और सुखी लकड़ियों का ही इस्तेमाल किया जाता है।"[74] कृषि के पारंपरिक तरीकों का विकास करने के बजाय उसके आधुनिकीकरण की एक अंधी दौड़ शुरू हुई। शहर केन्द्रित विकास और सुविधाभोगी तथा उपभोक्तावादी संस्कृति के चलते बड़े पैमाने पर प्राकृतिक संसाधनों का दोहन शुरू हुआ। धीरे-धीरे तमाम तरह की नीतियाँ बनाकर प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को पूंजी और मुनाफे की वस्तु में रूपांतरित कर दिया गया और हालत यह हो गयी है कि पर्यावरण ही नहीं स्वयं भारत का हर नागरिक भी कमोबेश इस अंधी दौड़ की चपेट में आ गया जबकि एक तरफ विकास के नाम पर जंगलों की कटाई हो रही है तो दूसरी तरफ हजारों आदिवासियों और किसानों को विस्थापित किया जा रहा है। लेकिन सदियों से जंगलों के साथ जीवन का रिश्ता निभाने वाले यह आदिवासी ही एकमात्र कड़ी है जो आज भी घटते जंगल और बिगड़ते पर्यावरण को बचाने में हमारी मदद कर सकते हैं। पर इनकी सुनता कौन है उलटे इन आदिवासियों को जंगल बचाने के नाम पर अपने जीवन से बेदखल करने के प्रयास दुनिया भर में हो रहे है। आज समाज में यांत्रिकिकरण का कार्य तेजी से चल रहा है, कारखाने, कंपनियाँ, परियोजनाएँ आदि की बडोत्तरी हो रही है जहाँ मनुष्य की यह प्रगति मनुष्य को धन-संपन्न और गरीबी से उठा रही है वही दूसरी तरफ प्राकृतिक आपदाओं को भी निमंत्रण दे रही है जैसे बाढ़,

[74] आदिवासी दुनिया, पृ.178

सुखा, भूकंप, जल और खाद्य वस्तुओं की उपलब्धता का असंतुलन बड़े पैमाने पर विस्थापन, बेरोजगारी भुखमरी गरीबी और बीमारियों का सामना कर रहा है। बाँध और परियोजनाओं के नाम पर बड़े पैमाने पर हो रहे विस्थापन ने आवास और जीविका का संकट पैदा कर दिया लेकिन आदिवासी प्रकृति से खिलवाड़ कभी नहीं करते, वे हर पौधे-पेड़ों से परिचित भी होते हैं कि कौनसा पौधा तथा जड़ी-बूटी किस बिमारी में काम में आती है उसकी पूरी जानकारी रहती है । वे प्रकृति को नुक्सान ना कर संरक्षित करते चलते है । आज विकास के नाम पर आदिवासियों को प्रकृतिक संपत्तियों से वंचित कर दिया जा रहा है। इनको जंगल धरोहर के रूप में प्राप्त हुए थे।

निष्कर्ष

'गायब होता देश' और आकुपच्चनि देशम्' क्रमश: रणेन्द्र तथा वी. चन्द्रशेखर राव द्वारा लिखित आदिवासी साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यास है। दोनों उपन्यास क्रमश: मुंडा एवं चेंचु जाति की समस्याओं को उजागर करते हैं । मुंडा झारखंड राज्य में रहने वाली जाति है और चेंचु आंध्रप्रदेश राज्य में रहने वाली जाति है । मुंडाओं और चेंचुओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांकृतिक स्थितिओं के अध्ययन के साथ उनकी समस्याओं का भी स्पष्टीकरण इस अध्याय के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय

'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' आदिवासी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन

'तुलनात्मक' शब्द का प्रयोग व्यवहारिक जगत में तौलना, गिनना, जोड़ना, साम्य-भेद की पहचान आदि के लिए प्रयुक्त किया जाता है । तुलना में दो या दो से अधिक भिन्न भाषाओं, कृतिओं, सिध्दांतों में, राष्ट्रीय या सांस्कृतिक समूहों के साहित्य का अध्ययन किया जाता है । साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन व्यापक दृष्टि प्रदान करता है। अपने आरंभिक स्वरूप में साहित्य के क्षेत्र में इसका प्रयोग नगण्य था। जैसे-जैसे संस्कृतियों का विचार-विनिमय बढ़ा वैसे-वैसे उसमें विस्तार के साथ विकृति भी हुई। फलतः साहित्यिक लेन-देन की प्रक्रिया बढ़ी। संचार-साधनों में प्रचुरता आयी और काल-परिवर्तन होते गये ।

'तुलनात्मक साहित्य' विश्व साहित्य के अध्ययन में अपनी भूमिका के कारण अपना महत्व स्थापित करने में सफल रहा है । साहित्य के साथ-साथ सांस्कृतिक अध्ययन की राहें भी अनुवाद की सहायता से तुलनात्मक साहित्य ने खोल दी हैं। इससे न केवल भौगोलिक अपितु सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक रूप से समाज के समीप आने में मदद मिली है ।

अंग्रेजी के 'कॉम्पेरेटिव'(comperative) शब्द का रूपांतरण 'तुलना' है । अंग्रेजी में सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग मैथ्यू अर्नाल्ड ने एम्पियर के शब्दों 'इस्तवार कोंपारातीव' का अनुवाद करते हुए सन् 1848 में किया था। फ़्रांसीसी में इस शब्द का प्रयोग 'सादृश्य' के लिए किया जाता है अर्थात् भिन्न-भिन्न साहित्य में इसका प्रयोग विभिन्न रूप में हुआ है । हेनरी एच.एच रेमाक 'तुलना' को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि "तुलनात्मक साहित्य एक राष्ट्र के साहित्य की परिधि के परे दूसरे राष्ट्रों के साहित्य के साथ 'तुलनात्मक अध्ययन' है तथा यह

अध्ययन कला, इतिहास, समाजविज्ञान, विज्ञान, धर्मशास्त्र आदि ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के आपसी संबंधों का भी अध्ययन है ।"[1]

साहित्य में पारस्पारिक तुलना करने की शैली 'तुलनात्मक' कहलाती है। साहित्य कल्पबध्द नहीं होता है। वह कालजयी होता है । अत: विभिन्न भाषाओं के साहित्य, विभिन्न कालों और विभिन्न रचयिताओं के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। इससे विभिन्न देशों एवं जातियों के बीच पारस्परिक भाव विनिमय सहज होता है । संस्कृति और सामाजिक परिवेश में निहित अंतर स्पष्ट होता है। दोनों साहित्यों की विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं, सांस्कृतिक एकता की प्रतिष्ठा का मार्ग उन्मुक्त होता है तथा विभिन्न प्रान्तों के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक साम्य-वैषम्य लोगों की जीवन शैली तथा भाषाओं के स्वरूप उद्घाटन हेतु तुलनात्मक साहित्य की आवश्यकता पायी जाती है।

'तुलनात्मक' शोध अधिक उत्तरदायित्व का कार्य होता है। भारत एक बहुभाषी देश है इसलिए तुलनात्मक साहित्य का अधिक महत्व है। अतः साहित्यिक अध्ययन के आधार पर अनेक भाषाओं के पारस्परिक संबंधों को रेखांकित किया जाता है। अनेकता में एकता अन्वेषण तुलनात्मक अध्ययन का मुख्य लक्ष्य होता है। हिन्दी भाषा और साहित्य को केंद्र में रखकर प्रादेशिक भाषाओं के साहित्यिक अध्ययन से राष्ट्रीय एकता अखंड बनी रह सकती है । यह कार्य यदि दो भाषाओं की कृतियों में किया जाए तो पाठक को दोनो भाषाओं का परिचय रहना जरूरी हैं जिसमें समानता और असमानता सरल और स्पष्ट रूप से तुलनात्मक अध्ययन से समझी जा सकती है ।

आदिवासी साहित्य में 'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' महत्वपूर्ण उपन्यास हैं । भारत में बहुत अधिक मात्रा में जनजातियाँ निवास करती हैं । जिसमें पूर्व भारत के झारखंड राज्य में मुंडा आदिवासी तथा दक्षिण भारत के आंध्रप्रदेश राज्य में चेंचु आदिवासी । यह दोनों

[1] तुलनात्मक अध्ययन भारतीय प्ररिप्रेक्ष, इन्दनाथ चौदरी प्र.17

उपन्यास आदिवासी के दो अलग-अलग जाति (मुंडा,चेंचु) पर आधारित हैं। 'गायब होता देश' उपन्यास मुंडा जाति पर आधारित है तो 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास चेंचु जाति पर आधारित है। दोनों उपन्यास अलग-अलग परिवेश, भिन्न-भिन्न क्षेत्र, भिन्न भाषा की विशेषताओं को स्पष्ट करते हैं।

'तुलनात्मक अध्ययन' से तात्पर्य उस रचना की साम्यता और विषमता के विश्लेषण से होता है। दो रचनाकारों का भिन्न-भिन्न आदिवासी जातियों पर लिखना उनके भिन्न परिवेश का सूचक है। यह भिन्न परिवेश ही रचना की मूल संवेदना को एक दूसरे से अलग बनाता है। ऐसे अनेक बिंदु हैं जिस पर विचार किए बिना रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन सम्भव नहीं है। वे निम्न बिन्दु हैं-

4.1 सामाजिक समस्याएँ :

आदिवासियों की अपनी भाषा एवं सांस्कृतिक पहचान होती है। उनकी सामाजिक संरचना समूह पर आधारित है। भारत में अनेक जनजातियाँ, विशिष्ट समूह, विशिष्ट क्षेत्रों में निवास करती हैं। आदिवासी समाज समानता पर आधारित होता है। इस समाज में स्थायिकरण नहीं होता है। आदिवासी समाज आपसी संबंधों को ज्यादा महत्व देता है।

आदिवासियों की खस्ता हालत का फायदा बाहरी समाज के लोग उठाने में लगे हुए हैं। वे उनकी गरीबी, बेरोजगारी, जातिवादी छुआ-छुत, दहेज की समस्या, शिक्षा की समस्या तथा भूख की समस्या इन समस्याओं का लाभ उठा कर उनके बेटे और बेटियों को रोजगार का झांसा देकर या दलालों से प्राप्त कर लेते हैं। उनके बच्चों से घर गृहस्थी या होटलों में काम करवाते हैं। रणेंद्र के उपन्यास में इस तरह व्याख्यान्वित करते हैं-"बिल्डर्स वाला उसका काम खूब चल नहीं रहा था, इसलिए मुझे लगता है या तो केके ट्रैफिकिंग के धंधे में चला गया था या ड्रग्स के। इनके बिना इतने रुपए और किसी धंधे में आ ही नहीं सकते। ज्यादा उम्मीद है कि ट्रैफिकिंग में ही हो

हर साल खरीफ के बाद, धनकटनी खत्म होते हजारों की संख्या में लड़कियां काम के बहाने गायब की जाती हैं । दलाल होते है उनके गाँव-घर के ही लोग।"[2] आदिवासियों के बच्चे जन्मत: गरीबी, भुखमरी के साथ अपना जीवन बिताते हैं । अशिक्षित और कम शिक्षित होने के कारण इनकों कमजोर, बुध्दू समझकर इनका सारा धन संपत्ति छीन ली जाती है और औद्योगीकरण के द्वारा आदिवासियों को अपनी जड़ें से उखाड़ दिया जा रहा है । जबकि 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में एक वक्तव्य सामने आता है। कठीन परिस्थिति में जीवन बिता रहे चेंचु आदिवासियों की समस्याओं से दुखित होते हुए वीर पेदा मंतय्या से कहता है कि "कोई भी जाति इतना दु:ख सहन नहीं कर पाई होगी ये बीस सालों में चेंचुओं की तरह अपमान सहते घायल होने वाली और कोई जाति नहीं है ।"[3] इससे स्पष्ट होता है कि भारत के सभी राज्यों में फैली हुई आदिवासी जातियाँ अनेक समस्याओं से उथल-पुथल होती हुई जीवन बिता रही हैं । लेकिन चेंचु जाति की तरह और कोई जाति दु:ख-दर्द अपमान सहते हुए घायल होने वाली जाति नहीं होगी समाज में वर्ग भावना निम्न लोगों में निराशा का भाव उत्पन्न करती है । विशेष रूप से हिन्दू जाति व्यवस्था तो इसी दृष्टि से बहुत दोषपूर्ण होती है । इसमें निम्न जाति के लोगों को बहुत ही अमानवीय और हीन अवस्था में रहना पड़ता है । उन पर समाज में चलने-फिरने, खाने-पिने, पहनाने-ओढ़ने और शिक्षा-दिक्षा आदि के संबंध में अनेक प्रतिबन्ध होते हैं ।

मुंडा और चेंचु जनजातियों की समस्याएँ :

समुदाय के भीतर उलझे सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि विषयों पर सामूहिक सभा में निर्णय लेना तथा अपराधी को दंडित करना आदि मामले गाँव की पंचायत निपटाती है । समुदाय का एक मुखिया होता है जो छोटे-बड़े विषयों एवं समुदाय की आवश्यकताओं तथा समस्याओं को हल करता है । मुंडा आदिवासी में "प्राचीन काल से मुंडा के

[2] गायद होता देश, पृ. 18

[3] आकुपच्चनि देशम्, पृ.96

सामाजिक संगठन के अंतर्गत प्रत्येक गाँव का एक मुखिया होता था। इसे गाँव का 'मुंड' कहते थे। मुंडारी में मुंडा का अर्थ हुआ गाँव का मुखिया या प्रतिनिधि बहुत पहले इसका चुनाव हुआ करता था लेकिन बाद में यह पद वंशगत हो गया।"[4] मुंडा का काम गाँव की समस्याओं को सुलझाने में नेतृत्व देना होता है। वह गाँव में समय-समय पर बैठने वाली पंचायत का अध्यक्ष होता है। गाँव के बाहर अंतग्रामीण मामलों में वह गाँव का प्रतिनिधित्व करता है।

चेंचु आदिवासी के सामाजिक संगठन के अंतर्गत "मुखिया को 'पेद्दा मनिषि' या 'राजा' के नाम से संबोधित किया जाता है। गूडेम (गाँव) के उम्र में सबसे बड़े व्यक्ति को ही मुखिया के लिए चुनते हैं। जिस गोत्र में ज्यादा लोगों की संख्या होती है उसे मंत्री पद के लिए चुनते हैं। यह मंत्री राजा के सलहाकार के रूप में काम करते हैं। जबकि गाँव में किसी समस्या पर मनमुटाव होता है तो इस समस्या को सुलझाने के लिए पंचायात बैठक बुलाई जाती है और निर्णय लिया जाता है। पंचायत का निर्णय घर-घर जा कर सूचना देने के लिए जिस व्यक्ति को नियुक्त किया जाता है उसे 'कोलेगाडु' या 'बंटवाडा' (सुचना देनेवाला,बंटवारा) कहा जाता है।"[5]

मुंडा और चेंचुओं की तुलना कि जाए तो मुंडा जाति में 'मुखिया' का प्रतिनिधि चुनाव से होता था। बाद में वह चुनाव वंशगत हो गया। जबकि चेंचुओं में 'मुखिया' का चयन परंपरा से चली आ रही है। जिसके अनुसार अपने कस्बे के उम्र से वरिष्ट व्यक्ति को अपना 'रजा'या प्रतिनिधि बनाया जाता है। 'आकुपच्चनि देशम्' में 'पेद्दा मनिषि' (मुखिया) की भूमिका यही होती है "पेद्दा गुरय्या गूडेम का 'पेद्दा मनिषि' है। इसका कर्तव्य गूडेम में जो भी समस्या हो या कोई पूजा-पर्व हो आदि में लोगों की सहायता करना तथा मार्गदर्शन करना होता है। यह प्रमुख व्यक्ति 'पेद्दा मनिषि' सभी निर्णय गूडेम के लोगों के समक्ष लेता है।"[6] जबकि मुंडा समाज में सामाजिक संरचना में "प्रत्येक मुंडा गाँव में एक मुंडा (मुखिया) और एक पाहन होता है। पाहन

[4] झारखंड के आदिवासियों के बीच, पृ. 61

[5] चैंचु, के. श्यामला, पृ. 87

[6] आकुपच्चनि देशम्, पृ.51

पुजारी को कहते हैं। पहले मुंडा समाज में पाहन मात्र पुजारी ही नहीं होता था, उसकी भूमिका और भी व्यापक और महत्वपूर्ण होती थी। अंग्रेजी राज के समय मुंडा गण का विघटन शुरू हुआ तो पाहन सिर्फ़ पुजारी रह गया और उसका दाहिना हाथ मुंडा (मुखिया) गाँव का नेता और प्रबंधक बन बैठा।"[7] पाहन का काम गाँव की सामूहिक पूजाओं को सम्पन्न करता है। वह अच्छी खेती, वर्षा और शिकार की सफलता के लिए भी अनुष्ठान और पूजा करता है। पहले पाहन का चुनाव हुआ करता था लेकिन बाद में यह पड़ वंशगत हो गया। मुंडाओं में पाहनों का कोई वर्ग या जाति नहीं है और न ही वह बाकी मुंडाओं से श्रेष्ठ और ऊपर माना जाता है। उसके कार्य का महत्व माना जाता है और उसके बदले उसे सम्मान और भौतिक लाभ दिया जाता है।

दोनों उपन्यास के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि एक समुदाय का अन्य समुदाय से मनमुटाव, विवाह या किसी दम्पति के बीच हुआ झगड़ा आदि मामलों के सन्दर्भ में समान रीति-नीति विधान होते हैं। सामाजिक नियमों को तोड़ने की ताकत किसी में नहीं होती है। उन नियमों के विरोधी को बहिष्कृत कर दिया जाता है। या वही खुद गाँव से बाहर निकल जाते हैं। इन भिन्न समाजों में नियमों की कठोरता में समानता दिखती है।

इन आदिवासियों के क्षेत्र में किसी बाहरी शक्तियों का हस्तक्षेप होने पर ये सभी लोग एक हो कर इसका प्रतिकार करते हैं। अगर परिस्थितिवश यह समस्या समुदायों की हो तो सभी समुदाय के मुखिया एक होकर इस विषय पर अंतिम निर्णय लेते हैं। नृत्यों, त्यौहारों में कोई विवाद हो जाने पर पंचायत में यह मामला सुलझाया जाता है। इस प्रकार चेंचु जाति किसी बाहरी न्यायालय अथवा वकीलों की वाक् चतुरी पर विश्वास नहीं करती है। बाहरी समाज चेंचु जाति के लिए अनावश्यक लगता है। उनके गूडेम की पंचायत ही उनका न्यायालय है।

[7] झारखंड के आदिवासियों के बीच, पृ.63

उपर्युक्त समग्र विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि मुंडा और चेंचु जाति की सामाजिक संरचना कई स्तर पर समान है तथा कुछ स्तर पर भिन्न भी है । अतः एक तरह से दोनों उपन्यासों के अध्ययनों से इन जातियों की आंतरिक कानून व्यवस्था का हमें ज्ञान होता हैं ।

में बहुत अंतर है ।

4.2 आर्थिक समस्याएँ:

आदिवासी अर्थव्यवस्था पूरी तरह वन उत्पादों पर निर्भर रहती है । वे वनों से अनेक प्रकार के उत्पादों का संग्रह करते हैं । आज़ादी के बाद वन नीति लागू की गई जिससे वे वनों में जाकर उत्पादों का संग्रह करने में कठिनाई महसूस करने लगे । अनेक नियमों के चलते इन्हें वनों से दूर कर दिया गया जिससे इनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। वर्तमान समय में आदिवासियों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के प्रयास में साहूकारों द्वारा की जाने वाली बेईमानी, छल-कपट तथा ठेकेदारों द्वारा किये जाने वाले शोषण को रोकने के लिए सरकार ने कई योजनाएँ बनाई हैं जिससे आदिवासियों द्वारा किये गए वन उत्पादों के संग्रह का सही मूल्य चुकाते हुए सरकारी दुकानों द्वारा उत्पादों को खरीदने की योजना है तथा जंगल में रहने के कारण जंगल के विकास के लिए सरकार द्वारा किये जा रहे अनेक कार्यों का संचालन भी शामिल है । ये योजना कहाँ तक सफल हो रही हैं? आज ये आदिवासी ठेकेदारों के पास मजदूरों का काम करते हैं तथा उनके हाथों में शोषण के शिकार हो रहे हैं । अधिक समय काम करने पर भी सही मुआवज़े न मिलना आदि समस्याओं से वे पीड़ित हैं ।

स्वतन्त्रता के बाद पूंजीपति वर्ग, जमींदार, उच्चवर्ग के लोगों द्वारा आदिवासियों को आर्थिक रूप से सहायता करने के लिए उनको जमीन देने के वायदे करके जंगल को साफ़ कर खेती योग्य बनाने की सलाह दी जाती है । आदिवासी इनके बातों को सही मानकर खेती करने के लिए मानसिक रूप से तैयार हो गए और खेती भी करने लगे लेकिन सभ्य कहलाने वाले

समाज का स्वार्थ यहाँ भी इन आदिवासियों को चैन से जीने नहीं देता है । पहले इनको जंगल से बेदखल किया जाता था पर अब तो स्थिति ऐसी हो गयी है कि इन्हें अपने खेतों से हाथ-धोना पड़ रहा है । इसी संदर्भ में उपन्यास का एक अंश सामने आता है कि "केतना बढ़िया गोभी-बिलौती (टमाटर) उगता था ऊ खेत में । अब तो किसी के नाली का पानी घुस रहा है तो किसी के लैट्रिन का टंकी ओवरफ्लो हो रहा है। गरीब उराँव किसन किस-किस से झगड़ा मोल ले? ऐसा मजदूर कर दिया गया था कि जमीन बेचने के अलावा कोई चारा ही नयँ बचा था।"[8] इस स्थिति में गरीब किसान क्या करता उसके सामने पेट पालने का प्रश्न खड़ा हो गया था । हार कर वह मजदूरी करने को विवश हो गया । इसी संदर्भ में उपन्यास का आदिवासी पात्र वीरेन कहता है कि "देखिए दादा ! उन्नीस सौ पन्चान्बे से बीए कर के बैठे हैं । बाबा-एंगा ने सोचा होगा कि पढ़ लिख कर हमलोग का खर्चा उठाएगा, लेकिन ऐसा निकम्मा हैं हम । एतना किस्मत खराब है कि का कहें । बाबा-एंगा की कमाई पर ही पेट चला रहे हैं । कोई काम से झिझक नयं है । जानते हैं कि आदिवासी में जनम लिए हैं तो कुर्सीवाला नौकरी तो कोई आसानी से देगा नहीं चमड़ी का रंग देखकर लेबर-कुली से ज्यादा कोई बुझता नहीं।"[9] इनकी जरूरतें अधिक नहीं बल्कि सीमित होती हैं । लेकिन आज इन आदिवासियों की आवश्यक चीजें भी दूर होती जा रही हैं, जबकि बी.ए की पढ़ाई हो तो क्या? ऐसी तो बहुत ही बीत जायेंगे पर इनको पूछने वाला कोई होता ही नहीं है। ऐसी स्थिति में मुंडाओं की आर्थिक स्थिति से चेंचुओं की आर्थिक स्थिति को तुलना किया जाए तो चेंचुओं की स्थिति बहुत ही हीन स्थिति में है इसी सन्दर्भ में 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में एक अंश सामने आता है एक वृध्द व्यक्ति गाँव-गाँव घूमकर कहानियां बताते हुए अपना आजीविका चलाता है उन्हीं के बातों में "जीवन बिताना कठिन है सर गाँव में लोग भूख से मर जा रहे हैं, काम नहीं है, हमें पूछनेवाला ही कोई नहीं है मेरा बीस साल का बेटा क्षय बीमारी से जूझ रहा है, न दवाईयां खरीद सकू, न पौष्टिक भोजन खिला सकू, क्यों बिताना है ये

[8] गायब होता देश, पृ.257

[9] वही, पृ.106

जीवन, चेंचुओं की तरह मृत्यु को साथ लेकर चलना मालुम हो रहा है ।"[10] आज यह समस्या सभी आदिवासियों की है लेकिन इन सब से ज्यादा समस्याएँ चेंचु आदिवासियों को झेलनी पड़ रही है ।

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में असमानताएँ :

किसी भी राज्य के विभिन्न प्रदेशों में रहने वाले लोगों के जीवन स्तर में अथवा अर्थव्यवस्था के विकास की असमानता को आर्थिक विकास में प्रादेशिक असमानता कहते है। आर्थिक विकास में असमानताएं विश्व के लगभग सभी भागों में पाई जाति है, परन्तु भारत जैसे विकासशील देशों में समस्याएँ काफी अधिक हैं । इसी तरह भारत में पाई जाने वाली मुंडा तथा चेंचु आदिवासियों के बीच आर्थिक विकास के रूप में बहुत असमानताएं दिखाई देती है। असमानताओं के मुख्य कारण गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षित तथा प्राकृतिक संसाधनों, सामाजिक एवं संस्कृतिक व्यवस्था प्रौद्योगिकी आदि के वितरण में असमानताएं हैं । प्राकृतिक संसाधनों (उपजाऊ, मिट्टी, खनिज, वन संपदा) का वितरण पृथ्वी के सभी भागों पर समान रूप से नहीं हैं कुछ भाग प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से बहुत संपन्न है परन्तु कुछ अन्य प्रदेशों में इन संसाधनों का लगभग पूर्ण अभाव है । ऐसी परिस्थिति में आर्थिक विकास में असमानताएं होती है । झारखंड राज्य खनिजों की दृष्टि से भारत का सबसे धनी राज्य है परन्तु अधिक औद्योगिक विकास महाराष्ट्र, गुजरात, पश्चिम बंगाल आदि राज्यों में हुआ है । क्योंकि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सामाजिक, सांस्कृतिक अवस्था आदि अन्य कारक भी विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न मात्रा में सक्रिय होते हैं और आर्थिक विकास में असमानताओं को जन्म देते हैं । इन कारकों में धन, ज्ञान, बचत व निवेश, न्याय व समानता, राजनीतिक स्वतन्त्रता, दरिद्रता साक्षरता लिंग-भेद आदि के संबंध में लोगों का दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है । आर्थिक विकास की दृष्टि से झारखंड राज्य के निवासी मुंडा आदिवासी तथा आंध्रप्रदेश राज्य में स्थित चेंचु आदिवासियों से बहुत बेहतर आर्थिक जीवन

[10] आकुपच्चनि देशम्, पृ.100

बिता रहे हैं लेकिन चेंचुओं को दिन बिताना तथा एक समय का भोजन मिलना ही बहुत मुश्किल है।

मुंडा आदिवासी तथा चेंचु आदिवासी की आर्थिक स्थिति की तुलना की जाए तो, मुंडाओं की आर्थिक स्थिति चेंचुओं से बहुत बेहत्तर है। मनुष्य की मूलभूत जरूरतें भोजन, कपड़ा, तथा निवास मुंडाओं के पास उपलब्ध है। लेकिन चेंचु आदिवासी इन मूलभूत जरूरतों से बहुत दूर हैं। इनका निवास स्थान केवल और केवल जंगल है तथा ये आदिवासी जंगल में उपलब्ध कंद, महुए के पत्ते, शहद, गोंद आदि पर अपनी जीविका चलाते हैं।

इन आदिवासियों की आर्थिक स्थिति पारम्पारिक स्तर पर एक-दूसरे से भिन्न है। उसी तरह इनकी समस्याएँ भी एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं। इन भिन्नताओं की तुलना पहाड़ी क्षेत्र, समतल क्षेत्र (मैदान प्रांत) या अन्य क्षेत्रों के आदिवासियों से की जा सकती है। इन आदिवासियों में से कुछ वन आधारित गतिविधियों पर निर्भर हैं तो कुछ बसे किसानों के रूप में कार्यरत हैं।

मुंडा आदिवासी ज्यादा से ज्यादा समतल क्षेत्रों में निवास करने सभ्य समाज की ओर ध्यान दे रहे हैं तथा समय के अनुसार इन लोगों में बदलाव भी आ रहा है। थोड़ी बहुत खेती करना, पढ़ाई की ओर ध्यान देना तथा मुंडाओं में कुछ लोग सरकारी नौकरियां भी कर रहे है। जैसे उपन्यास में मुंडा आदिवासी व्यक्ति राष्ट्रपति के हाथों 'सैनिक परमवीर चक्र' प्राप्त करने वाला परमेश्वर पाहन, सोनामानी दी शिक्षिका रही, अनुजा पहले एक सरकारी अफसर फिर एन.जी.ओ कार्यकर्ता और फिर पत्रकार, नीरज पालीटेक्निक पढ़ा है, तथा सोमेश्वर मुंडा विदेश तक पहुंचकर पढ़ाई करते हैं। लेकिन 'आकुपञ्चनि देशम्' उपन्यास में चित्रित चेंचु आदिवसियों का जीवन मुंडा आदिवासी से बहुत ही भिन्न है। चेंचुओं का निवास स्थान पहाड़ी क्षेत्रों में तथा कुछ वन आधारित गतिविधियों पर निर्भर रहता है। अगर चेंचु का कोई बच्चा दसवीं कक्षा की पढ़ाई करता है तो उसको एक अफसर की तरह समझा जाता है। इन लोगों को व्यवसाय करने

की कोई इच्छा नहीं होती है न भविष्य के बारे में ये सोचते हैं । चेंचु आदिवासी का पढ़ा-लिखा एक भी व्यक्ति इस 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में दृष्टिगोचर नहीं होता है ।

हर क्षेत्र की परिस्थितियाँ अलग-अलग हो सकती हैं जैसे कि कई क्षेत्रों के आदिवासी बिना मूलभूत सुविधा के ही संतुष्ट रहते हैं। आदिवासियों में बहुत से लोगों को बहुत मुश्किल से एक वक्त का भोजन नसीब हो पाता है। जैसे चेंचु आदिवासियों का भी यही हाल है । 'आकुपच्चनि देशम्' में लेखक ने चेंचुओं की दूभर स्थिति को दिखाया है "अंकालम्मा भूख न सहनकर चार कुकुरमुत्ता चुन कर खाती है जो वह विशपुरित थे । तो इससे ही अपना प्राण छोड़ देती है।"[11] अंकालम्मा का भूख से तडपकर विषरहित कुकुरमुत्ता खाना उनकी लाचारी एवं दयनीयता को दर्शाता है । यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जिन लोगों के पास एक वक्त की रोटी नहीं है उन लोगों की स्वास्थ-दशा क्या रही होगी या कैसी होगी? चेंचुओं से मुंडाओं की तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है कि मुंडाओं की आर्थिक स्थिति चेंचुओं से बहुत बेहत्तर होती है । जैसे 'गायब होता देश' उपन्यास में आदिवासी पात्र वीरेन के बातों में "कई तरह के व्यंजन बनाई थी रमा दी। खपड़ा रोटी, मडुआ रोटी, कोयनार साग पहली बार चखे थे। आलू-प्याज पत्ता की सब्ज़ी तो मेरी माँ भी बनाती थी। गाढ़े गरम दूध में डूबी चावल की छिद्रदार मोटी रसभरी खपड़ा रोटी ने दिल लूट लिया था।"[12]

दोनों उपन्यासों में अगर आर्थिक स्थिति को देखा जाए तो 'गायब होता देश' में चित्रित मुंडा आदिवासी की आर्थिक स्थिति तथा 'आकुपच्चनि देशम्' में चित्रित चेंचुओं की आर्थिक स्थितिचेंचुओं की आर्थिक स्थिति तथा मुंडाओं की आर्थिक स्थिति में कोई समानता नजर नहीं आती है ।

[11] आकुपच्चनि देशम्, पृ. 106

[12] गायब होता देश, पृ. 246

4.3 राजनीतिक समस्याएँ :

पहले आदिवासी विदेशी आक्रमणकारियों, मुगल बाद्शाहों, ब्रिटिश उप-निवेश्वादियों से लड़ रहे थे और अब सत्ता लोभी राजनेता, बहुराष्ट्रीय कंपनियों, अपने ही देश की सेना और पुलिस से लड़ रहे हैं । उत्तर आधुनिक राष्ट्रवाद पर एक बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है विशेषकर भारत के सन्दर्भ में कि 'राष्ट्रवाद' क्या राष्ट्र के कुछ ही लोगों के लिए है? डॉ.वीर भारत तलवार कहते हैं कि "झारखंड में तो ऐसी कई छोटी-छोटी जातियाँ हैं असुर है, शबर है, खडिया है, बिरहोर इनकी जनसंख्या कुछ हजार बच गयी है, कुछ एक हजार, किसी की ढ़ाई हजार बची है, किसी की सात-आठ हजार बची है, ये कैसा राष्ट्र है जो अपने देश के आदिवासियों को जीने नहीं देता । ये कैसा लोकतंत्र है? जिसमे आदिवासी भाषाएँ और आदिवासी जातियां खत्म होती जा रही हैं? ये आदिवासी इस राष्ट्र का क्या छीन ले रहे हैं कि राष्ट्र ने इनका जीना मुश्किल कर रखा है? आप जानते हैं आदिवासियों की जनसंख्या इस देश की बाकी जनसंख्या की तुलना में बहुत पीछे है उसकी वृध्दि का अनुपात बहुत कम है । अक्सर आदिवासियों के बच्चे नहीं होते। आदिवासी लंबे समय तक विवाह नहीं कर पाते । हमेशा तनावग्रस्त रहते हैं । इसलिए बाकी सामान्य रफ्तार की तुलना में उनकी जनसंख्या की वृध्दि की रफ्तार बहुत कम है । आदिवासी से क्या समस्या है इस राष्ट्र को?"[13] स्पष्ट होता है कि यह समस्या आदिवासियों से नहीं है बल्कि उनके निवास स्थानों से है । अत्यंत कीमती उर्जा से भरा है उनका निवास क्षेत्र । विशेषकर झारखंड के मुंडा समुदाय का क्षेत्र इसी क्षेत्र को केंद्र में रखकर रणेंद्र अपने उपन्यास में लिखते हैं कि "पहाड़ की चोटियाँ एक 'खगोलीय अक्ष' हैं जिनके चारों ओर समूचा आकाश, सारा ब्रह्मांड चक्कर काटता है । क्षितिज पर खड़ी मातृपहाड़ी और उससे दूर खड़े या पड़े उसके टुकड़े, जो उससे खास कोण या रेखा में होते हैं या समानांतर या संधि स्थलों पर, दोनों मिल कर ऊर्जा क्षेत्र का निर्माण करते हैं । जिसके केंद्र में ससनदिरि (मृतक की मिट्टी को ढंकने वाली चट्टान-पट्टी)

[13] भारतीय राष्ट्र और आदिवासी, वीर भारत तलवार, WWW. DEBATEONLINE.COM, पृ.2-3

या विद्दिरि (मृतक की याद में ससनदिरि से सटे या अकेली खड़ी चट्टान-पट्टियां) होती हैं।"[14] विशेष उर्जा क्षेत्र में पहाड़ों और वनों के निचे अमूल्य खनिज संपदा को आदिवासी बचाते आए हैं जिसके खनन के लिए भहु-राष्ट्रीय कंपनियाँ बेताब हैं। इससे असीम मुनाफे के साथ विकसित देशों के साम्राज्यवादी हीत भी संबंध रखते हैं।

'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में चेंचु आदिवासियों के सन्दर्भ में एकअंश सामने आता है उपन्यास का एक पात्र अलल सुंदरम जो पैसों के लालच ने इसको राजनीति में रहते हुए शोषक वृत्ति का मनुष्य बना दिया है जिसके कारण वह चेंचु जाति के लोगों को अपना शिकार बनालिया है। वहाँ स्वयं को सरकार का प्रतिनिधि मानता है। वह चेंचुओं को संबोधित करते हुए कहता है कि "क्या सरकार कुछ नहीं है समझे? पूरी तुम्हारी मर्जी चलेगी क्या? जो पसंद आए जगह पर जाने का।"[15] दोनों उपन्यासों में सेट-साहूकार, जमींदार, राजनेता पूंजीपति वर्ग के लोग अपना स्वार्थ पूर्ति के लिए दबाया, कुचला जा रहा है। मुंडा आदिवासी पड़े-लिखे शोषित हो रहे हैं तो चेंचु आदिवासी अशिक्षित, गरीबी तथा दिन बिताना ही कठिन है और एक समय का भोजन एकत्र करना ही मुश्किल है फिरभी ये शोषित और पीड़ित हो रहे हैं।

आधुनिक भारत के जनतंत्र की समस्याएँ :

आजादी के 65 साल बाद भी भारत के आदिवासी उपेक्षित शोषित और पीड़ित नजर आते हैं। राजनीतिक पार्टियाँ और नेता जनतंत्र के विकास के लिए बाते करते हैं लेकिन उस पर अमल नहीं करते हैं। 20 वीं सदी व्यापक स्तर पर संसदीय जनतंत्र के स्वीकार्य बनने की सदी रही है। इसी सदी में दुनिया के अधिकतर देशों में संसदीय जनतंत्र की स्थापना हुई है। मनुष्य की बेहतरी के लिए इसे कारगार जीवन पध्दति के रूप में देखा गया लेकिन सभ्यता के विकास के साथ-साथ जनतंत्र के व्यवहार के प्रति आदर के बदले विभिन्न सामाजिक समूहों और व्यक्तियों

[14] गायब होता देश, पृ.197

[15] आकुपच्चनि देशम्, पृ.72

में अपने स्वार्थ के लिए जनतंत्र को इस्तेमाल करने की सत्ता-लोभी राजनीतिक प्रवृत्ति ही अधिक सक्रिय होती गई। ऐसे में व्यावहारिक जनतंत्र निरर्थकता के गर्क में गिरने लगा। उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण के दौर में यह गिरावट और तेज हुई है। भारत के संसदीय जनतंत्र के नव रूढ़ीवाद, नव जातिवाद, नव संप्रदायवाद और पूंजीवाद पर आरूढ़ होकर किसी भी तरह से चुनाव जीतकर जनतंत्र सत्ता पर कब्जा कर लिया जाता है।

प्रत्येक नागरिक अपने प्रतिनिधि को चुनता है, यानि कि हर नागरिक अपना भाग्य का निर्माण स्वंय करता है। हमारे देश को दुनिया का सबसे बड़ा जनतंत्र तथा लोकतंत्र कहा जाता हैं। जनतंत्र या लोकतंत्र का मतलब जनता द्वारा जनता का शासन, जनतंत्र में सत्ता आम आदमी के हाथों में होती हैं। लेकिन आज आधुनिकिकरण के दौर में हमारी जनतंत्र की व्यवस्था सत्ता लोभी राजनीतिक संकटो में फंसी है। इसलिए सरकार ने जिन नीतियों पर अमल किया है उनमें अमीरी और गरीबी के बीच खाई चौड़ी कर दी है। जिन लोग के श्रम से देश चलाता है, उन्हें ही उनके हक और अधिकार से वंचित किये जा रहे हैं। महंगाई और भ्रष्टाचार के कारण सत्ता लोभी राजनेता आम जनता को लुटते जा रहे हैं। आम जनता के आज इतनी समस्याएँ है कि वह इसके बोझ के नीचे दब जा रहे हैं। आज की राजनीति का मूल तत्व सरकार बनाना है। राष्ट्र तथा राजनीति संविधान का निर्माण करना जनहित के लिए है। उद्देश्य के बिना राजनीति असंभव है और इन्ही के विपरीत आज की परंपरागत राजनीतिक प्रक्रिया पर आम जन का भरोसा धीरे-धीरे खत्म होता जा रहा है। और राजनीति में वंशवाद तेजी से फ़ैल रहा है। आधुनिक भारत में भ्रष्टाचार तथा पूंजीपति के दौड़ में प्रशासन के अधिकारियों से लेकर चपरासियों तक प्रशासन को भ्रष्ट करते जा रहे है जिसके चलते आम लोगों की संपत्ति लुटी जा रही है।

हमारे देश की प्रजातांत्रिक जड़े जर्जर होती जा रही है। जो देश को संभालने वाले है वही देश को खाये जा रहे हैं। आज आज़ाद भारत में हमारी ही चुनी हुई प्रजातांत्रिक सरकारें

आदिवासियों के गाँवों, जंगलों, नदियों और पहाड़ों को इस कानून का दुरूपयोग करके विदेशी निगमों की भेंट चढाने में लगी हैं।

4.4 धार्मिक एवं सांस्कृतिक समस्याएँ :

धार्मिक आस्थाएँ मनुष्य के मन मस्तिष्क में आत्म विश्वास का भाव जगाती है और किसी भी समुदाय को आत्मसम्मान के साथ जीने के लिए आत्मविश्वास परम आवश्यक है। इसी आत्म विश्वास प्राप्ति हेतु आदिवासी समाज को असीम शक्ति के रूप में स्वीकार कर लिया है। यह समाज प्रकृति के आँचल में रहता है। भारतीय आदिवासियों में धर्म पर आस्थाओं की अनेक मान्यताएँ प्रचलित हैं। जीवित तथा मृत व्यक्तियों के बीच के भेद को ये आत्मा की शक्ति मानते हैं।

वन्य समाज में यह विश्वाश पाया जाता है कि आत्मा की शक्ति केवल व्यक्ति में ही नहीं बल्कि पशु-पक्षी में भी पायी जाती है। आवाज़ के गूँजने, परछाई दिखाई पड़ने तथा आसूं के निकलने में भी अभौतिक घटनाओं के दर्शन किये जाते हैं। आत्माओं को विश्वाश का नियंत्रक माना जाता है। आदिवासी समाज हर उस घटना को जो उनके जीवनगत से जुडा है लेकिन आज विज्ञान के युग में इनकी संस्कृति तथा धार्मिक आस्थाएँ समाप्त होने लगी हैं "कंपनी और सरकारी अधिकारियों का तो लगता है, यहाँ के इतिहास से परीचय ही नहीं है। क्यों जरूरी है इतना बड़ा बाँध कि मुंडाओं के पूर्वज-पितरों द्वारा खुद जंगल काट कर बसाए गाँव, खूंटखट्टी, उनमें डुबा जाए ? मुंडाओं की संस्कृति-इतिहास डूब जाए ? सरना-ससान और ससानदिरि की समझ ही नहीं है। मृत मुंडाओं के कब्र पर गाड़े गए पथरों पर उनका पूरा वंशवृक्ष लिखा रहता है। सैकड़ों वर्षों के इतिहास दर्ज हैं ससानदिरि के पथरों पर। बेतरतीब ढंग से नहीं गड़े हैं ये, इनके गाड़ने का भी अपना विज्ञान है।"[16] यहाँ स्पष्ट होता है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, पूंजीपति वर्ग, जमींदार आदि को क्या पता है आदिवासियों की संस्कृति, सभ्यता। इनका तो मानना

[16] वही, पृ. 50

होता है कि ये किसी की भलाई से ज्यादा बुराई ही करते है इसलिए आदिवासी इनके शोषण के शिकार बन रहे हैं।

आत्मा और सामूहिकता के प्रश्न :

'गायब होता देश' उपन्यास में एक दृष्टव्य है कि "लेकिन इंसान का रोवा (छाया) यहीं रह जाता है। यह वही रोवा है जो इंसान जब सोया रहता है तो बाहर निकल कर घूमता है। रोवा जो देखता है इंसान उसे ही सपने में देखता है। यह जीयु (आत्मा) की तरह नहीं। इसकी भी अपनी जरूरत है, इसलिए गाड़ते समय चावल-पैसा सब रखा जाता है ताकि रोवा की जरूरत पूरी होती रहे।"[17] इसी आत्मा का उल्लेख 'आकुपच्चनि देशम' उपन्यास में चेंचु आदिवासी के जीवन में दिखाई देता है "अगर दोपहर के समय बच्चें जब सोते हैं तो उनकी आत्मा बाहर निकल कर तितली के रूप में घूमती हैं। कोई भी बच्चे बीमार है तो उनकी आत्मा के लिए चक्कर काटती रहती है।

यहाँ स्पष्ट होता है कि दोनों जातियों में आत्मा तथा छाया के मिथक प्रचलित हैं। आदिवासी समाज में आत्मा की पूजा को महत्व दिया गया है और इन जनजातियों का मुख्य आधार धार्मिक विश्वास और आस्था है।

मुंडा तथा चेंचु आदिवासियों के देवी-देवताओं के नामों में भिन्नताएँ दिखाई देती है। मुंडाओं के प्रमुख देवता हातुबोंगा, देसउली बोंगा, चांडी बोंगा, आदि हैं। ग्राम देवता के साथ जुड़ी मान्यताएँ यह है कि वह गाँव की रक्षा करता है "लेकिन रोवा कहीं नहीं जाता। हमारे पास रहता है, बोंगा (देवता) बन कर, अदिंग-बोंगको (पूर्वज-देवता) बन कर। हमारे सुख-दुःख का साझीदार, हमारा रक्षक, हमारा कवच, मुंडाओं को अमर बनाता।"[18]

[17] गायब होता देश, पृ. 57

[18] गायब होता देश, पृ. 57

चेंचु आदिवासी मल्लय्या (शिव) के परम भक्त है । इस जाति की स्त्री तथा पुरुष देवी-देवताओं की आराधना करते हैं । इनके पुरुष देवता बय्यन्ना, गुरवप्पा, पोतराजु, मल्लन्ना आदि हैं और स्त्री देवता, आदि शक्ति को मैसम्मा, पेद्दम्मा के नाम से आराधना करते हैं और नागम्मा, एल्लम्मा, अंकाल्लम्मा, मल्लम्मा, पोलिमेरम्मा इन ग्राम देवताओं की पूजा करते हैं । ये चेंचु लोग अपना नाम इन्हीं देवताओं के नाम रख लेते हैं । इन ग्राम देवता के साथ जुड़ी मान्यता यह है कि "हमारे देवी-देवता स्वप्नों के माध्यम से आने वाले संकटों की सूचना देते हैं और पारिवारिक सुख-शान्ति के निमित्त कुछ विशिष्ट पूजा करने की प्रेरणा भी देते रहते हैं।"[19] इन दोनों जातियों में भिन्न-भिन्न देवताओं के नाम होते हुए भी उनके देवताओं की पूजा बिना बलि दिए नहीं हो सकती है । जो भी कार्य करना हो बलि देने पर ही वह कार्य शुरू किया जाता है ।

मुंडा आदिवासी समाज में भी कोई काम अकेले नहीं कर सकता है । कृषि संबंधी काम या किसी का मकान बनवाना हो, सभी एक साथ मिलकर एक दूसरे की मदद करते हैं । 'गायब होता देश' उपन्यास में यही सामूहिकता का काम ही दिखाई देता है "जैसे एक की ख़ुशी में पूरा घर, पूरा टोला, पूरा हातु खुश होता है । वैसे ही घर में एक के बीमार पड़ने से पूरा परिवार बीमार महसूस करता है । इसी मानवीय अहसास ने होड़ो (मानव) पैथी को जन्म दिया।"[20] जबकि 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में चेंचुओं के बीच यही महसूस होता है "गूडेम (गाँव) में कोई कार्य करना होता है तो ये सामूहिक रूप से काम में शामिल होते हैं । झोपड़ी बनवाने में तथा शादी में कोई गाने गाते है तो कोई डफ़ली बजाते तथा कोई नाचते है।"[21] चेचुओं में जो भी कार्यक्रम हो उसमें वे शराब-मांस को ही महत्व देते हैं ।

आदिवासी समुदाय अपना अधिवास प्रकृति की गोद में ही बनाते हैं जहाँ प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक संसाधन और खनिज तत्वों की प्रधानता रहती है । ये इन प्राकृतिक संसाधनों का

---

[19] चैंचु, के.श्यामला, पृ. 62

[20] गायब होता देश, पृ. 239

[21] चैंचु, के.श्यामला, पृ. 53

संरक्षण के लिए भी इनके समाज में कई मान्यताएँ प्रचलित हैं जो इनके देवताओं से जुड़े हुए हैं। उपन्यास में वर्णित किया गया है जो नदी में हीरे होने की जानकारी के बावजूद भी उन हिरों को पाने की कोशिश भी नहीं करते हैं क्योंकि ग्राम देवता नाराज हो जायेंगे तभी तो गाँव के लड़के कहते हैं "बाबा-आजा ने दिखाया था कि उस गुफा के अंदर जो पड़े पोलेदार ढेले हैं, जिनके चारों तरफ झींगा मछलियाँ चिपकी रहती हैं, दरअसल वही हीरे हैं लेकिन उन्हें छूना तो दूर, देखने की भी मनाही है अगर हमें इस खड़ानिशान गाँव के सिमान में रहना है, तो यहाँ के देसउली बोंगा(ग्राम देवता) के यह आदेश का तो पालन करना होगा। हमारे पूर्वजों को सक्षात देसउली बोंगा ने यह आदेश दिया था, सो भूल कर भी हम उन गुफाओं की तरफ नहीं जाते। कभी-कभी कोई बड़ी मछली हमारे जाल को ही खींच कर गुफा की तरफ ले जाए तो और बात है हमारी साफ नीयत तो देसउली बोंगा भी जानते हैं और इकिर बोंगा (नद देवता) भी।"[22]

यहाँ स्पष्ट है कि दोनों उपन्यासों में सामूहिकता का भाव दिखाई देता है। मुंडा आदिवासियों में गाँव को हातु, टोली तथा इलाका के नाम से जाना जाता है जबकि चेंचु आदिवासियों के गाँव को गूडेम तथा पेंटा इस नाम से संबोधित किया जाता हैं।

4.5 विस्थापन की समस्या :

आदिवासी समाज में विस्थापन की सबसे बड़ी समस्या रही है। वर्तमान समाज में उत्पन्न आधुनिक जीवन की विसंगतियाँ, ओद्योगिकरण से उत्पन्न विस्थापन आवस, गरीबी और रोजगार की समस्या, संस्कृतिक विघटन तथा संविधान के तहत प्राप्त विशेष सुविधाओं व विकास कार्यों के आदि के कारण आदिवासियों को विस्थापित किया जा रहा है।

'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यासों को विस्थापन की दृष्टि से तुलना किया जाए तो स्पष्ट होता है कि 'गायब हौया देश' उपन्यास में चित्रित मुंडा आदिवासियों का

[22] गायब होता देश, पृ. 139

क्षेत्र दुलमी बाँध परियोजना के कारण उनको विस्थापित करने के लिए मजबूर किया जा रहा है तो 'आकुपच्चनि देशम' उपन्यास में चित्रित चेंचुआदिवासियों को वेलिगोंडा बाँध परियोजना के कारण उनको उनके निवास स्थान से बेदखल किया जा रहा है। चेंचु आदिवासियों को सरकारी कानून और परियोजनाएँ, विदेशी कंपनियां, पुलिस और नक्सलवादियों ने उन्हें और घने जंगल में जाने को मजबूर किया जा रहा है।

आदिवासियों की समस्याओं को रणेंद्र ने नजदीक से देखा है कैसे उनकी जमीनों को उनसे छीन लेना, उनपर अत्याचार करना तथा झूठे चोरी के आरोप लगाकर उनके संसाधनों पर गिध्द दृष्टि लगाकर समय मिलते ही बाहरी लोग इनका दुरूपयोग करना शुरू कर देते हैं "क्या कहा जाए, ये ही लोग मुर्ख हैं, मुंडा, उरांव, खड़िया, महतो सब। भारी मुर्ख सबके लिए दोना और कोना देने को हाजिर। भूखे को भात भरा दोना और सिर छुपाने के लिए कोना चाहे सन सैंतालिस के बाद रिफ्युजी आ रहे हों पंजाब, सिंध, बंगाल से। चाहे बड़का फैक्टरी खुलने पर बिहार यू. पी. से लोग उलट पड़े हों। दोना-कोना देते-देते हालत यह है कि अब अपने लिए ही दोना-कोना नहीं बचा 'लाल बीवी' अब उनके कब्जे अब तो शहर की चौहद्दी के दस-बीस कोस तक जमीन भकोस गए हैं ये राकस।"[23] आदिवासियों की संपत्ति को लुटते जा रहे है लेकिन वे कुछ कर नहीं पा रहे हैं। जमींदारों, पूंजीपतियों, सरकार के विरोध में कुछ करना इनके वश में नहीं है। जबकि 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में "राजनेता अलल सुंदरम पैसों के लालच में अपने ही लोगों के विरोध में पुलिस के सहारे चेंचु आदिवासियों को उनके निवास स्थान से विस्थापित कर उनकों पुनर्वास में भेज दिया जता है।"[24] इन विस्थापित लोगों में सर्वाधिक संख्या होती है अनपढ़,गरीब ग्रामीण लोग तथा अधिक संख्या में आदिवासी ही विस्थापित हो रहे हैं।

[23] गायब होता देश, पृ. 89-90

[24] आकुपच्चनि देशम्, पृ.125

विकास और संसाधनों की समस्याएँ :

विकास के नाम पर जंगल और भूमि की लुट के साथ प्राकृतिक संसाधनों के अवैज्ञानिक दोहन ने इस धरती की हरियाली मिटा दी । आदिवासी समुदाय जो सदियों से वंचित, शोषित और विकल्पहीन रहे हैं । उनकी हालात बहुत ही सोचनीय और चिंताजनक है समानता, अवसर और अधिकारों से वंचित कर इस समुदाय को तथाकथित विकास की मुख्यधारा से जोड़ने के बजाय इनको अपनी जमीन से बेदखल किया जा रहा है ।

विस्थापन एक ऐसी त्रासदी है जो स्त्रियों और बच्चों के जीवन में अन्धेरा बना देती है । वे घर विहीन हो जाती हैं इतना ही नहीं विस्थापन का प्रभाव महिलाओं के जीवन में और भी कई स्तर पर पड़ता है । जिसमें एक जमीन से बेदखल और कानूनी अधिकारी से वंचित होना भी शामिल है । भूमि अधिग्रहण के समय उन्हें पता ही नहीं होता है कि परियोजना के लिए उनकी जमीन ली जायेगी या नहीं गाँव वालों को इसकी खबर तक नहीं दी जाती है । जाहाँ उन्हें बसाया जाता है उस स्थान में रहने के लिए अस्थायी और एक-एक कमरे का मकान ही दिया जाता है, यहा से भी उन आदिवासियों को उजड़ा देना तय हैं लेकिन वह कहाँ जायेंगे खुद उन्हें पता ही नहीं होता हैं । विस्थापित होते ही वह अपने बुनियादी हक से भी वंचित हो जाते हैं । विस्थापित किये गये लोगों को पता ही नहीं कि उनकी कितनी जमीन परियोजना में या कारखाने में ली गयी है और बदले में कितनी जमीन दी गयी है क्योंकी जमीन पर दखल का कोई कागज पुनर्वास के समय उन्हें नहीं दिया जाता हैं । उपन्यास में रणेंद्र लिखते हैं कि “शुरू के दिनों में इन बाबुओं ने नमक के बदले, तौलिया के बदले, रिक्शा और घड़ी के बदले जमीनें लिखवा लीं । कचिया (रुपया) इनके पास, कलम इनके पास, साहब-सूबा, हाकिम-हुक्काम सब इनके पास फिर दिक्कत क्या थी? खतियान में जो जमीन पसंद आ रही हो उसी के आगे छप्परबंदी लिख लो । सन चौरानबे में भी सन सैंतालिस के हुकुमनामा का सरअंजाम मौजूद । धुआं दिखा कर नए कागज़ को सौ साल पुराना बनाने का जादू कचिया के एक फूंक में साठ-सत्तर साल पुराना स्टांप

पेपर हाज़िर। जो मांगोगे वही मिलेगा।"[25] यहाँ स्पष्ट होता है कि जो सरकारी प्रशासन तन्त्र के अंतर्गत काम करने वाले तहसीलदार, पुलिस कर्मचारी आदि सभी जमींदार तथा पूंजीपति वर्ग के लोगों का ही समर्थन करते हैं, इनके ही हाथों में आदिवासीयों का अधिकार होता है। पुराने को नया रूप देना तथा नये को पुराना रंग चढ़ाना सब इनके ही हाथों में होता है।

विकास की इस तेज दौड़ में पीछे छूटते जा रहे आदिवासियों की ओर देखने भर की फुर्सत किसी को नहीं हैं कि कहीं हम औरों से पीछे न रह जायें आज तो भूमंडलीय निगमों के निरंकुश उत्पीड़न के नव-उपनिवेशवादी दौर में पूंजीपति वर्ग, सरकार, जमींदार पुरे राज्यों के आदिवासी क्षेत्रों में जल विद्युतपरियोजनाओं, विभिन्न प्रकार के खनन कार्यों और कारखानों की स्थापना के लिए भूमि का अधिग्रहण अंधाधुंध होती जा रही हैं। ये पूंजीवादी कंपनियाँ विस्थापित लोगों के पुनर्वास की जिम्मेदारियों से दूर हटने का प्रयास करते रहते हैं। जल, जंगल, जमीन पर पुर्णतः निर्भर आदिवासियों की तादाद इन विस्थापित लोगों में सर्वाधिक शोचनीय है। यह आदिवासी समुदायों की त्रासदी ही है कि प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से समृध्द होना ही उनकी जमीन के लिए अभिशाप बन गया है।

आदिवासी सदियों से प्रकृतिक स्वेच्छा जीते आ रहे हैं। इस प्रकृति के साथ आदिवासी समाज की धार्मिक-सांस्कृतिक मान्यताएँ और पूर्वजों की यादे जुड़ी हैं। उनके बुरु बोंगा और सिंगबोंगा इसी के जंगलों-पहाड़ों में निवास करते हैं उनके पूर्वज इसीकी ससनदिरि में सोये हुए हैं। अगर जंगल नहीं बचेगा तो उनकी सहज सिध्द संपत्ति कट जायेगी फिर ये कहाँ अपने बोंगाओं की पूजा करेंगे ?

[25] गायब होता देश, पृ.79

4.6 स्त्री समस्या :

आदिवासी स्त्रियां स्वावलंबी होती हैं। आदिवासी समाज में घर-परिवार चलाने का दायित्व ज्यादातर आदिवासी स्त्रियाँ ही निभाती है । वे पुरुष पर निर्भर नहीं रहती हैं । वे खुद-कमाकर अपना और अपने पुरे परिवार का भरण करती हैं । ऐसी स्त्रियों को संपत्ति में हिस्से का अधिकार ना होने के कारण परित्यक्त या विधवा होने पर डायन कहकर अपमानित, प्रताड़ित करना या उनकी हत्या तक कर देना आदिवासी समाज में आज भी प्रचलित है ।

दोनों उपन्यासों को तुलना की दृष्टि से देखा जाय तो 'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यासों में स्त्री का शोषण दिखाई देता हैं 'गायब होता देश' उपन्यास में स्त्री का शोषण तथा 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में स्त्री शोषण से ज्यादा चित्रित है क्योंकि आकुपच्चनि देशम उपन्यास में चित्रित चेंचु आदिवासी अभी भी सभ्य समाज से कोसों दूर पर है जबकि गायब होता देश उपन्यास में चित्रित मुंडा आदिवासियों के जीवन स्थितियों में परिवर्तन आना तथा गैर आदिवासियों से संपर्क बढ़ने के फलस्वरूप स्त्रियों का शोषण अधिक होता आ रहा है । इसीसे स्त्रियों का नजर अन्धाज कर दिया जा रहा है परन्तु आदिवासी स्त्रियाँ जो कि अपने समाज के अंदर स्वेच्छा और सुरक्षित महसूस करती हैं लेकिन बाहर की दुनिया के संपर्क में आते ही उनके देह का विश्लेषण शुरू हो जाता है । अपने समाज द्वारा दिए गए स्वछंदता का ही परिणाम है कि वे निर्भयता के साथ बाहर निकलती है लेकिन बाहरी समाज के सामन्ती-पुरुष सत्ता उन्हें अपने पंजे में जकड़ लेती है ।

भारतीय समाज एवं संस्कृति के अनुसार कहा जाय तो स्त्री को भू-माता, धरती माता, आदि नाम दिए गए हैं । उनकी विशेष रूप से पूजा भी की जाती है । लेकिन आज स्त्री का सम्मान कहाँ है? स्त्रियों पर पुरुषों की नीच दृष्टि हमेशा लगी रहती है । मौका ढूंढते रहते हैं । अगर स्त्री घर से बाहर निकलना ही बस उनका पीछा करते रहते हैं 'गायब होता देश' उपन्यास में पचास-पचपन साल की बूढी-अधेड़ एंगा-माय पर बलात्कार किया जाता है इस सन्दर्भ में

सोनामानी दी कहती है कि "इ छोड़ा सब दिन में जो करता हो, सांझ ढलते कुकुर में बदल जाता है । कातिक के कुकुर में । दारु-हड़िया तो पुरानी बात है, ब्राउन सुगर और न जाने कौन-कौन नया-नया नशा। दू सौ-ढाई सौ रुपया में पुडिया बस्ती के सब गुमटी पर। स्कूल, चाहे आंगनबाड़ी की कोठरी में रोज़ ब्लू फिल्म। ये ही बीचे में अंधेरिया में गलती से कोई सियानी औरत आज नल पर पहुंच जाती मत पूछ दादा । स्कूल के टूटल खिड़की से कोठरिया में खींच लेते । इहो नयं देखते कि हमरे एंगा-माया-बहिन तो नयं है । नयं तो दू-चार ठो फिलिम देखला के बाद दू बजे-तीन बजे रात में कुकुर जैसन झोंपड़ी में चमडा सूंघते रहते । कौन कोठरी में मरद नहीं है! कौन झोपडी का बांस की झझडी ढीली है ! कहाँ का प्लास्टिक का छावन उखड़ सकता है !"[26] स्त्रियों का शोषण सदियों से होता रहा है । अगर स्त्री घर से बाहर जायेगी तो भी उनका सम्मान के बदले अवमान ही होना पड़ता है जबकि 'आकुपच्चनि देशम' उपन्यास में एक अंश सामने आता है कि "गैर आदिवासी स्त्री सपना चेंचु आदिवासियों के बीच काम करती है क्योंकि उनके समस्याओं को हल करने तथा उनको सहायता करने के लिए स्वयंसेवी संस्था में कार्यकर्ता का काम करती है लेकिन सी.आर.पी.एफ जवान का मानना था कि नक्सलियों को सहायता करती है इसी क्रोध से उसका बलत्कार करते है ।"[27]

स्पष्ट होता है कि केवल आदिवासी समाज में आदिवासी स्त्रियों का ही शोषण नहीं बल्कि सभ्य कही जाने वाली गैर आदिवासी स्त्रियों का भी शोषण, अत्याचार, बलात्कार अधिक होता आ रहा है । कहा गया है कि भारतीय संविधान में स्त्री और पुरुष को समान अधिकार दिए गए हैं। लेकिन यहाँ अधिकार केवल पुरुषों तक ही सीमित रहा है । अगर पुरुष समाज में स्त्रियों के प्रति आदर तथा सम्मान भाव रखता है तो इतने अत्याचार, शोषण उनके साथ क्यों होते है ?

[26] गायब होता देश, पृ.160

[27] आकुपच्चनि देशम, पृ.25

4.7 पर्यावरण से संबंधित समस्याएं :

विकास के नाम पर वनों की अंधाधुंध कटाई, जनसंख्या वृध्दि, नदी-बाँध परियोजनाएँ, खनिजों का उत्पादन करना, कंपनिया, कारखाने, वाहनों की वृध्दि आदि कारणों से पर्यावरण को प्रदूषित किया जा रहा है। वायु प्रदूषित हो ध्वनी प्रदुषण हो जल प्रदुषण या भूमि प्रदुषण सब में व्यवसाय की भागीदारी होती है। कई प्रकारों से पर्यावरण प्रदुषण बढ़ता जा रहा है। उत्पादन इकाइयों से निकलने वाली गैसों और धुंए से मशीनों, वाहनों के उपयोग से, औद्योगीकरण तथा शहरीकरण के विकास, खनन तथा खदान संबंधी गतिविधियाँ आदि कारक होते हैं । इन प्रभावों के कारण प्रकृति में आपत्तियाँ बढ़ती हैं जैसे बाढ़, सुखा, कम वर्षा होना सुनामी, भूकंप जैसे प्राकृतिक आपदाओं ने मनुष्य मनुष्य के जीवन को उथल-पुथल कर रख दिया है ।

आदिवासियों का संबंध अन्य जातियों से अधिक जंगल से रहा है । ये प्रकृति के पुजारी हैं तथा प्रकृति पर अधिक से अधिक निर्भर रहना आदिवासियों की मुख्य प्रवृत्ति है । प्रकृति से प्राप्त जीवनावश्यक साधन सामग्रियों से अपनी जीवन व्यतीत करना इनके जीवन की एक सामान्य प्रवृत्ति है। 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास का नायक वीरा ने जंगल में ही खेलना, गाना सीखा है "माँ के साथ जंगल जाता था। कौन से पेड़ का फल मीठा है किस तरफ फलों का पेड़ है तथा एक-एक पेड़ को पहचानती थी उनकी माँ । तरह-तरह के फूल लाती थी। तथा वीरा मित्रों के साथ जंगल में झींगुर खेलता था खुद ही कंदील तैयार करके रात में जंगल में जुगुनु पकड़ता था।"[28] इस प्रकार प्रकृति से अटूट संबंध बनाना केवल आदिवासी ही जानते हैं तथा उनके दिन और रात की शुरूआत प्रकृति से ही होती है तथा उनके जीवन का प्रारंभ पक्षियों एवं लहराते पौधों, हवाओं के झोंकें से शुरू होता है और जीवन का अंत उसी प्रकृति में शामिल हवाओं के साथ निस्तब्ध वन में होता है ।

[28] आकुपच्चनि देशम्, पृ. 108

'गायब होता देश' में मुंडा आदिवासी प्रकृति के सम्मानकर्ता हैं। वे प्रकृति में आनन्द मंगल का अनुभव करते हैं तथा प्रकृति उनकी सहचरी रही है । आदिवासी समाज सदियों से प्रकृति का उपासक रहा है तथा प्रकृतिमय जीवन-दर्शन में विश्वास करता है। उपन्यास में रणेंद्र इनके इस प्रकृति प्रेम को इस तरह व्यक्त करते हैं "ईसा के सैकड़ों वर्ष पूर्व जब मुंडा यहाँ पधारे तो जंगल को जलाकर खेती की जमीन तैयार की लेकिन वनस्पतियों के प्रति कृतज्ञता कम नहीं हुई, और बढ़ी । गाँव के छोर पर वन का एक हिस्सा पवित्रता के घेरे से बांध दिया। उस घेरे में आए सारे पेड़-पौधे-लता-गुल्म पूजनीय और आदरणीय हो गए। ये सरना-स्थल कहलाये। एक गाँव के कई-कई सरना स्थल होते । गाँव के सबसे नजदीक के सरना-स्थल के वृक्षों पर ग्राम-देवता हातु-बोंगा को का निवास माना गया, जिसे 'देसउली बोंगा' भी कहा गया है।"[29]

इन आदिवासियों में वन संवर्धन, वन्य जीवों एवं पालतू पशुओं का संरक्षण करने की प्रवृत्ति परंपरागत रही हैं इस कौशल दक्षता एवं प्रखरता के फलस्वरूप आदिवासियों ने पहाड़ों, घाटियों एवं प्राकृतिक वातावरण को संतुलित बनाए रखा इसी सन्दर्भ में लेखक प्रस्तुत करता है कि "इन्हीं सखुआ के झुरमुट में सरना माई का निवास, जिनकी पूजा मुंडा करते हैं प्रकृति के प्रति एक आधार-कृतज्ञता। वृक्ष न होतो, हरियाली न होती तो प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया कैसे होती? प्राण-वायु कहाँ से आती? जीव-जगत आस्तित्व में कैसे आता?"[30] सदियों से जंगल में जीवन बिता रहे आदिवासियों ने जंगलों को जला कर खेती योग्य किया, लेकिन वनस्पतियों के प्रति कृतज्ञता कम नहीं हुई बल्कि बढ़ी है ।

दोनों उपन्यासों में प्रकृति से गहरा संबंध बना कर आदिवासी जीवन बिता रहे है लेकिन समय के अनुसार मुंडा आदिवासी बदल रहे हैं । सभ्य समाज से संबंध बना रहे हैं लेकिन चेंचु आदिवासी मुंडाओं से भिन्न है । भविष्य पर इन लोगों को भरोसा और इनका कोई लक्ष्य भी नहीं

[29] गायब होता देश, पृ.1-2

[30] वही पृ.1

है । जंगल से उनका संबंध गहरा करके जीवन बिता रहे हैं । यह सन्दर्भ चेंचु व्यक्ति लिंगय्या के बातों में "सर हमारे चेंचुओं को जंगल से बाहर निकाल रहे है, वनअधिकारी झोपड़ियाँ उखाड़ रहे, जंगल को छोड़कर चेंचु जाति जीवित नहीं रह सकती है सर, जंगल में ही पैदा हुए, जंगल में ही बड़े होकर, जंगल में ही मर जाते हैं।"[31]

वर्तमान समय में पर्यावरण समस्या विकरल रूप ले रही है। आधुनिक मानव ने पर्यावरण को प्रदूषित करता जा रहा हैं लेकिन उससे उत्पन्न होने वाले समस्याओं को नजर अंदाज कर रहा है। ओद्योगिकरण के विका में मनुष्य ने अपने स्वार्थ के चलते प्रकृति को विनाश करते जा रहे है । धरती को ठंडक पहूँचानेवाले शीतल और वन कट जाने से धरती का तापमान बढ़ने लगा है । हमारी विकास की सोच इतनी बलवती हो गयी है कि आने वाले पीढ़ियों को कई समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। इंसान ही है जिसमें प्रकृति का सबसे अधिक शोषण किया है। मनुष्य आज भी प्रकृति के विनाश कार्य में लगे हुए है । जंगल कटते जा रहे हैं, नदियाँ प्रदूषित हो रही हैं, ये ऐसे कारण हैं जिससे ग्लोबलवार्मिंग एवं अन्य आपत्तियां बढ़ती जा रही हैं। मनुष्य की जरूरतों को पूरा करने के लिए बनाये जाने वाले कारखानों की संख्या लगातार बढ़ रही है जीससे उत्पन्न होने वाले विषैले धुनों के माध्यम से पृथ्वी ही नहीं वरन पुरे वातवरण को प्रदूषित कर रहे है । दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही ओद्योगिकरण के चकाचौध में प्रकृति को विनाश करते मनुष्य अपना स्वास्थ्य को भूलता जा रहा है इसीसे पीढ़ी दर पीढ़ी समाप्त हो जायेगी ।

सारांश के रूप में अगर कहा जाए तो सामाजिक इतिहास लेखन के क्रम में सूक्ष्म इतिहास लेखन के प्रयासों ने इतिहालेखन और अध्ययन की दिशा बदल दी है । अब इतिहास राजा-रानियों एवं युध्दों मात्र की कथा न रहकर सामान्य मनुष्य के जीवन एवं उनके सामाजिक-सांस्कृतिक संघर्षों से जुड़ गया है ।

---

[31] मरणम अंचुना, पृ.10

4.8 'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' आदिवासी उपन्यासों में चित्रित समानताएँ एवं असमानताएँ :

रणेंद्र द्वारा लिखित उपन्यास 'गायब होता देश' में झारखंड के मुंडा आदिवासियों को केंद्र में रखा गया है और वी.चन्द्रशेखर राव द्वारा लिखित उपन्यास 'आकुपच्चनि देशम्' में आंध्रप्रदेश के नल्ल-मल पहाड़ों में स्थित चेंचु आदिवासियों को केंद्र में रखा गया है। दोनों उपन्यास दो अलग-अलग क्षेत्र से जुड़े हुए हैं। इन दोनों उपन्यास में चित्रित भाषा, परिवेश, संस्कृति तथा आदिवासियों के रीति-रिवाज एक दूसरे से कई धरातल पर समान हैं तो कुछ धरातल पर एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न नजर आते हैं। 'गायब होता देश' में मुंडा जाति के यथार्थ रूप को वाणी दी गई है तो 'आकुपच्चनि देशम्' में चेंचु जाति की दयनीय स्थिति को रेखांकित किया है। दोनों उपन्यासों में चित्रित जनजातियाँ एक-दूसरे से समान होते हुए भी परिवेश तथा अन्य कारणों के चलते एक-दूसरे से भिन्न है। उन्हीं समानताओं और असमानताओं के आधार पर स्पष्ट करने का प्रयत्न निम्नवत किया गया हैं।

4.8.1 'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यासों में चित्रित समानताएँ :

1. 'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यासों में चित्रित मुंडा और चेंचु आदिवासी प्रकृति से गहरा संबंध बनाकर अपना जीवन यापन करते हैं। दोनों जनजातियों में प्रकृति के प्रति समान भाव दिखाई देता हैं । ये आदिवासी सहज सिध्द प्रकृति में ही पुजा-पाठ करते हैं ।
2. मुंडा तथा चेंचु आदिवासियों में सामूहिकता दिखाई देती हैं । दोनों जातियों में विवाह, जन्म, मृत्यु आदि कार्यों में बलि देने की प्रथा है ।
3. दोनों जातियों में स्त्रियाँ पुरुषों के बराबर ही काम करती हैं । यहाँ किसी प्रकार का असमानता का भाव परिलक्षित नहीं होता है ।

4. दोनों उपन्यासों में मुंडा और चेंचु जाति के लोग विस्थापन की समस्या से जूझ रहे हैं- 'गायब होता देश' उपन्यास में चित्रित मुंडा आदिवासियों को 'दुलमी बाँध परियोजना' के कारण वह से विस्थापित करने के लिए मजबूर किया जा रहा है वही 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में चेंचु आदिवासियों को 'वेलिगोंड़ा बाँध परियोजना' के कारण विस्थापित किया जा रहा है।
5. दोनों उपन्यासों में मुंडा और चेंचु जनजातियों की सहज सिध्द संपत्ति को पूंजीपति, राजनेताओं, जमींदारों तथा दलालों द्वारा किया जा रहा अत्याचार, शोषण और अन्याय के पहलू हमें कई धरातल पर समान प्रतीत होते हैं।
6. दोनों उपन्यासों में मुंडा और चेंचु आदिवासियों को नक्सलवादी नाम से घोषित किया जाता है।
7. दोनों उपन्यासों में मुंडा और चेंचु जनजातियों को आर्थिक रूप से सहायता करने का प्रलोभन देकर उनकी जमीने छीन ली जाती है और बाद में उनपर अन्याय, अत्याचार किया जाता है इतना ही नहीं, कभी-कभी उन पर झूठा चोरी का आरोप लगाकर उनको पीटा भी जाता हैं। इस संदर्भ में दोनों आदिवासी जाति की स्थिति समान है।
8. दोनों उपन्यासों में मुंडा और चेंचु जनजाति के लोगों में एकता का भाव स्थित है। किसी के घर में मंगल-कार्य या दुखद घटना हो तो सभी लोग उसके भागीदारी बनते हैं जैसे घर में एक के बीमार पड़ने से पूरा परिवार बीमार महसूस करता है।
9. दोनों उपन्यासों में स्त्री शोषण के साक्ष्य उपलब्ध हैं।
10. 'गायब होता देश' उपन्यास में मुंडा आदिवासी तथा 'आकुपच्चनि देशम्'उपन्यास में चेंचु आदिवासी अपनी संपत्ति जल-जंगल-जमीन तथा अपने अधिकार के लिए आंदोलन, हडताल करते हैं।

11.'गायब होता देश' में मुंडा आदिवासी दुलमी बाँध परियोजना के खिलाफ आंदोलन करते हैं तो 'आकुपच्चनि देशम्' में वेलिगोंड़ा बाँध परियोजना के खिलाफ आंदोलन, हडताल करते हैं।

12.दोनों उपन्यासों में एक समुदाय का अन्य समुदाय से मनमुटाव, विवाह या किसी दंपत्ति के बीच हुआ झगड़ा आदि मामलों के संदर्भ में समान रीति-नीति विधान हैं। उन आदिवासियों में सामाजिक नियमों को तोड़ने की साहस किसी में नहीं है। इन भिन्न समाजों में नियमों की कठोरता भी समान दिखाई देती है।

4.8.2 'गायब होता देश' और आकुपच्चनि देशम्' में चित्रित असमानताएँ :

'गायब होता देश' और आकुपच्चनि देशम्' आदिवासी उपन्यासों में चित्रित मुंडा और चेंचु जनजाति के समानता के साथ-साथ असमानताएँ अधिक दिखाई देती हैं। उन असमानताओं का स्पष्टीकरण निम्नवत् दिया जा रहा है।

1. 'गायब होता देश' के रचनाकार रणेंद्र और आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास के रचनाकार वी.चन्द्रशेखर राव है। इन दोनों लेखको ने समाज के दोनों वर्गों को देखा है एक साधन संपन्न और दूसरा साधनहीन।
2. दोनों उपन्यास भिन्न भाषा, परिवेश तथा संस्कृति पर आधारित हैं।
3. 'गायब होता देश' उपन्यास का नायक किशन विद्रोही गैर आदिवासी है जबकि 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास का नायक चेंचु आदिवासी व्यक्ति वीर नरसिंह है।
4. 'गायब होता देश' उपन्यास में मुंडा आदिवासी सभ्य समाज की ओर ध्यान दे रहे हैं तो 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में चित्रित चेंचु आदिवासी घने जंगलों में ही जीवन बिताने का फैसले पर अटल हैं।

5. 'गायब होता देश' उपन्यास में मुंडा आदिवासी पात्र अधिक शिक्षित है तथा सरकारी नौकरियों में कार्यरत हैं जबकि 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में एक भी आदिवासी पात्र शिक्षित नहीं दिखाई देता हैं। अगर कोई 10वीं कक्षा पास कर ले तो उसे ही लोग उच्च शिक्षित मानने लगते हैं।
6. 'गायब होता देश' उपन्यास में चित्रित मुंडाओं के देवी-देवता देसउली बोंगा, चंडी बोंगा, हातु बोंगा, अदिंग बोंगा आदि नाम हैं जबकि आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में चित्रित चेंचु जनजाति के देवी-देवता मल्लय्य, बय्यन, गुरप्पा, मैसम्मा, पेद्द्म्म, आदि हैं चेंचु लोग उन देवी-देवताओं के नाम पर ही अपना नाम रखते हैं।
7. दोनों उपन्यासों में मुंडा और चेंचु आदिवासियोंकी आर्थिक स्थिति में बहुत भिन्नता दिखाई देती है क्योंकि मनुष्य की जो मूलभूत आवश्यकताएँ होती है रोटी, कपड़ा और मकान मुंडाओं के पास उपलब्ध है वहीं चेंचु आदिवासी इन मूलभूत आवश्यकताओं से बहुत दूर हैं।
8. मुंडा आदिवासीयों की अपनी थोड़ी-बहुत खेती होती है जिसमें वे अनाज उपजाते हैं लेकिन चेंचु आदिवासीयों का जीवन केवल शिकार पर ही निर्भर होता हैं। एक समय का भोजन एकत्रित करना ही इन लोगों के लिए बहुत मुश्किल है। यहाँ दोनों जातियों की आर्थिक स्थिति की असमानता को देखा जा सकता है।
9. दोनों उपन्यास में वेशभूषा की भिन्नता दिखाई देती है। 'गायब होता देश' में चित्रित मुंडा आदिवासियों पर आधुनिक प्रभाव दिखाई देता है वहीँ आकुपच्चनि देशम्' में चित्रित चेंचु आदिवासियों पर इसका प्रभाव नहीं दिखाई देता है। चेंचु जाति के पुरुष केवल लंगोटी के बिना नग्न ही रहते हैं और साधारण स्त्रियाँ साड़ी में दिखाई देती हैं।

10. ‘गायब होता देश’ उपन्यास में मुंडाओं के गाँव हातु, टोला, इलाका नाम से जाने जाते हैं जबकि ‘आकुपच्चनि देशम्’ उपन्यास में चेंचु आदिवासियों के गाँव गूडेम तथा पेंटा नाम से जाने जाते हैं।

11. ‘गायब होता देश’ उपन्यास में चित्रित मुंडा आदिवासियों में परिवर्तन हो रहा है लेकिन आकुपच्चनि देशम्’ उपन्यास में चेंचु आदिवासियों में पिछड़ापन स्थित है। इनमें कुछ बदलाव नहीं आया है।

12. आकुपच्चनि देशम्’ उपन्यास में चेंचु आदिवासियों में भूख की समस्या दिखाई देती है वहीँ मुंडा आदिवासियों में यह समस्या नहीं है।

13. आकुपच्चनि देशम् उपन्यास में चेंचुओं के दुःख-दर्द या वेदना ही अधिक दिखाई देती है जबकि गायब होता देश में इन तत्वों का चित्रण उतनी प्रमुखता से नहीं दिखता है।

14. चेंचु आदिवासी अशिक्षित होने के कारण उनको अपने देश, राज्य तथा गैर समाज की कोई जानकारी नहीं है वे अपना संसार उस क्षेत्र तक ही सीमित मानते हैं जहाँ तक वह अपने जरूरतों के लिए विचरण करते हैं। वहीं दूसरी और मुंडा जनजाति जो संसार तथा गैर आदिवासी समाज से संबंध रखकर अपनी प्रगति कर रही है उनके देश राज्य के बारे में उन्हें काफी ज्ञान है जिसकी जानकारी हमें गायब होता देश उपन्यास पढने पर होती है।

उपसंहार

भारत विभिन्न जातियों का देश है । भारत में कई धर्मों जातियों के साथ-साथ अनेक जनजातियाँ यहाँ के विभिन्न भौगोलिक परिसर में निवास करती हैं । भाषा, धर्म, जाति, संस्कृति की विभिन्नता इसको एक विशेष एकता के सूत्र में बाँधे रखती है । यहाँ के जंगलों में निवास करने वाली जनजातियाँ भी इस विशेषता से दूर नहीं है । इन विभिन्नताओं के बावजूद ये सारी जनजातियाँ भारत के मूल निवासी हैं । इन जनजातियों के अलग-अलग नाम, उनकी उप जातियाँ, उनकी संस्कृति, खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा तथा भाषा पूरी तरह एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी उनका जीवन और उन की समस्याएँ लगभग एक-सी ही प्रतीत होती हैं । कुछ जनजातियाँ अपने शर्मीले स्वभाव व संकोच के कारण बाहरी लोगों पर विश्वास नहीं करतीं, फलस्वरूप बाह्य समाज से अलग जीवन यापन करती हैं और अपने से बाहर के समाज को हमेशा शंका की दृष्टि से देखती हैं । कुछ आदिवासियों में बाहरी लोगों के प्रति आक्रोश एवं नफरत की भावना भी दिखाई देती है क्योंकि बाहरी समाज ने इन आदिवासियों के प्रति कभी विश्वास का भाव नहीं दिखाया । कदम-कदम पर उनका शोषण ही किया। अलग भौगोलिक परिवेश में अलग जीवन बिताते हुए शोषण झेलते रहे कभी एक नहीं हो पाए । वनों पर आधारित उनकी अर्थ व्यवस्था अधिक समय तक जीवन यापन का साधन नहीं बन सकी। आदिवासी समाज बदलते परिपेक्ष्य में व्यवसाय परिवर्तन की ओर उन्मुख नहीं हो सके उन्हें अपना अस्तित्व बनाए रखने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। कुछ ऐसी जनजातियाँ भी हैं जिनकी संख्या में निरंतर कमी आती जा रही है । ऐसे शोषण का शिकार, लुप्तासन्न जनजातियों में अधिक मात्रा में आंध्रप्रदेश की चेंचु जनजाति को हम देख सकते है जबकि झारखंड की मुंडा जनजाति शोषण, पीड़ित होती हुई उनकी संपत्ति लुटाई जा रही है । वी. चन्द्रशेखर राव ने 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास में और रणेन्द्र ने 'गायब होता देश' उपन्यास में इन्हीं जातियों को केन्द्र में रखकर उपन्यास लिखे हैं ।

रणेंद्र हिंदी क्षेत्र से और वी. चन्द्रशेखर राव तेलुगु क्षेत्र से हैं। ये दोनों आधुनिक दुनिया के महत्त्वपूर्ण रचनाकार के रूप में जाने जाते हैं। कथाकार रणेंद्र का रचना संसार बहुत व्यापक है क्योंकि अपने उपन्यास, कहानी-संग्रह एवं कविता-संग्रह में इन्होंने पूरे ब्रम्हांड को देखने की कोशिश की है। उन्हों ने आदिवासी समाज पर बढ़ रहे चौतरफा दबावों को रेखांकित किया है। उनकी रचनाओं को देखने से पता चलता है कि उनकी रूचि हाशिये के समाज की वास्तविक स्थिति को समाज के समक्ष उपस्थित करने में है। 21 वीं शताब्दी के प्रथम दशक के सर्वश्रेष्ठ दलित और आदिवासी लेखकों में वी.चन्द्रशेखर राव का नाम गिना जाता है। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा दलित और आदिवासी समाज की समस्याओं को उदघाटित किया है तथा दलित और आदिवासी समाज में चेतना लाने की कोशिश भी की है। इन दोनों रचनाकारों के उपन्यास 'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' आदिवासी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन' मेरे अध्ययन का विषय रहा है। इस शोध-प्रबंध को मैंने चार अध्यायों में विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय को दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग में आदिवासी साहित्य : अवधारणा, स्वरूप एवं विस्तार पर विचार किया गया है। इसके अंतर्गत भारतीय सामाज व्यवस्था में आदिवासी-साहित्य का स्वरूप साथ ही आधुनिक काल में आदिवासी साहित्य में उभरती आंतरिक चेतना पर प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त आदिवासी-साहित्य के विस्तार के अंतर्गत संथाल, मुंडा, कुडुख, बंजारा जनजातियों के साहित्य का परिचय दिया गया है। फिर तेलुगु साहित्य में आदिवासी जीवन के अंतर्गत आदिवासियों के सांस्कृतिक-संप्रदाय, परंपराओं को संक्षेप में विश्लेषित किया गया है। इस अध्याय के दूसरे भाग में रणेंद्र और वी. चन्द्रशेखर राव के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय दिया गया है। इसके अंतर्गत दोनों रचनाकारों का जीवन परिचय, रचना-यात्रा तथा उनकी कृतियों को संक्षेप में विश्लेषित किया गया है।

द्वितीय अध्याय में 'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' की कथावस्तु का विश्लेषण किया गया है। इसके अंतर्गत दोनों उपन्यासों में चित्रित कथाओं को प्रस्तुत किया है । उपन्यासकार रणेन्द्र ने 'गायब होता देश' उपन्यास 2014 में लिखा गया है । उपन्यास में झारखंड राज्य के मुंडा आदिवासी को केंद्र में रखकर समकालीन आदिवासी जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है । इस उपन्यास में मुंडा आदिवासी सांस्कृतिक-संप्रदाय, परंपरा, आचार-विचार मिथक और उनके इतिहास को यथार्थ रूप में रेखांकित किया गया है । उपन्यास का मुख्य पात्र किशन विद्रोही एक सामाजिक सरोकार वाला पत्रकार है । अपने आदर्शों पर चलने के कारण उसे कई मुश्किलों का सामना करना पड़ता है । पूंजीपति वर्ग, जमींदार तथा बहुराष्ट्रीय संस्थाओं के अफसर उनको एक ऐसे अंतर द्वंद्व में फंसा देते है कि उसमें से निकलना उसके लिए मुश्किल हो जाता है । कई मुश्किलों का सामना करते हुए आदिवासी समाज को बचाने की कोशिश करते हुए आगे बढ़ता है अंततः किशन विद्रोही को अपनी जान खोनी पड़ती है। उसकी ऐसी हत्या कर दी जाती है कि उसका शव ही नहीं मिलता है।

रचनाकार वी.चन्द्रशेखर राव ने 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यास 2012 में लिखा गया है। उपन्यास में आन्ध्रप्रदेश राज्य में स्थित चेंचु आदिवासियों को केंद्र बनाया है । इस उपन्यास में चेंचुओं की दुर्भर जीवन स्थिति, उनके दुःख-दर्द तथा वेदनाओं का यथार्थ पूर्ण चित्रण किया गया है । उपन्यास का नायक चेंचु आदुवासी वीरनरसिंहम (वीरा) बचपन में ही उसके क्षेत्र से दूर हो जाता है । आश्रम पाठशालाओं में अपनी पढ़ाई करता है । शोधार्थी के रूप में समाज शास्त्र में एम.फिल की छात्रा मोहिनी से परिचित हो जाता है । मोहिनी एक एन.जी.ओ संस्था का कार्य करती रहती है। वेलिगोंडा बाँध परियोजना के कारण वहाँ के चेंचु गूडेम(गाँव) में बाढ़ आने की वजह से चेंचुओं को फिर से दूसरी जगह बसाने के लिए एन.जी.ओ. संस्था की मोहिनी कार्यरत रहती है । चेंचु लोगों को मार्कापुरम नामक स्थान पर भेजने का संकल्प किया जाता है । इससे दस लाख रुपयों का लाभ मिलेगा यह सोच कर जमीन के कागज़, पत्र आदिवासी नागरिक वीरा को देकर भेजती है । लेकिन वीरा चेंचु गूडेम में पहुंचने के बाद वहाँ की दुर्भर परिस्थितियों को

देखकर उनमें से एक हो जाता है। 'पुनर्वास' के नाम पर आदिवासी वनों के पुत्रों को माँ से दूर करने का बड़ा षडयंत्र अलल सुंदरम जैसे राजनेता करता है । इस उपन्यास में आंदोलन, लड़ाइओं के बाद थोड़ा सुख से जीवन बिताने वाली मोहिनी है । वीरा वह व्यक्ति है जो आदिवासीयों के साथ परिस्थितियों का सामना करता है।

तृतीय अध्याय में 'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यासों में चित्रित समस्याओं को प्रस्तुत गया किया है। दोनों उपन्यासों में चित्रित मुंडा तथा चेंचु आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक, स्त्री-समस्या, विस्थापन तथा पर्यावरण से संबंधित समस्याओं को विश्लेषित किया गया है। मुंडा और चेंचु जनजाति सदैव से प्रकृति प्रेमी और प्रकृति के पुजारी रहे हैं। इनका जंगलों, वनों पर सामूहिक अधिकार रहा है। झारखंड के मुंडा आदिवासियों का निवास स्थान अत्यंत ही मूल्यवान है । फिर भी इतनी मूल्यवान जगह पर रहने के कारण भी उनमें कुछ बदलाव नहीं आ पाया। परन्तु उस मूल्यवान जगह से उनका कोई संबंध ही नहीं होता है लेकिन वही मूल्यवान जगह उनके लिए कब्र बनती जा रही है। आदिवासियों की मूल्यवान जमीन विकास के नाम पर लूटी जा रही है। सरकार, पूंजीपति वर्ग, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ तथा जमींदारों के द्वारा उनकी संपत्ति जल-जंगल-जमीन के साथ-साथ उनकी संस्कृति, उनका आचार-विचार, वेश-भूषा सबकुछ ख़त्म होता जा रहा है।

चेंचु आदिवासियों के पास खेती करने के लिए पर्याप्त भूमि नहीं है। ये केवल वनोपजों को एकत्रित करते हुए अपना जीवन बिताते हैं। इनकी मुख्य वृत्ति शिकार करना है। सरकार ने शिकार पर रोक लगाया । इस कारण से इनकी जीवन परिस्थिति दुर्भर हो गई है । इनकी दयनीय परिस्थिति का फायदा उठाते हुए महाजन, साहूकार उनका शोषण कर रहे हैं । मुख्यधारा के स्वार्थ लोलुप राजनेता उनको अपने निवास स्थान से बेदखल कर निः स्सहाय स्थिति में लाकर खड़ा कर देते हैं। चेंचु आदिवासियों का जीवन सरकार के छोटे कर्मचारियों से लेकर बड़े अफसरों के पहियों के नीचे घिसता चला जा रहा है तथा उन्हें डराते-धमकाते उनके साथ अन्याय पूर्ण व्यवहार करते रहे हैं। चेंचु जनजाति इतने भयवाह जंगल में जीवन बिता रही

है कि एक तरफ क्रुर जानवरों से खतरा तो दूसरी तरफ नक्सलियों से तथा पुलिस की बन्दूकों की गोलियों से इनका जीवन पूरी तरह से खतरों में ही बीत रहा है । सरकार के द्वारा अमल हुई योजनाएं उनके पास पहुंचती ही नहीं है । पूंजीपति तथा दलाल ही बीचों-बीच इनका फायदा उठाते रहते है और अपना पेट भरते रहते हैं ।

चतुर्थ अध्याय में 'गायब होता देश' और 'आकुपच्चनि देशम्' उपन्यासों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है । इसके अंतर्गत दोनों उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक, स्त्री, विस्थापन की समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है । मुंडा और चेंचु आदिवासी प्रकृति से अपना गहरा संबंध बनाते हुए जीवन-यापन करते हैं । दोनों जनजातियों में पूजा-पाठ सहज सिध्द प्रकृति में होते हुए भी उनकी संस्कृति अलग-अलग दिखाई देती है । उनके देवी-देवताओं के नाम अलग-अलग होते हुए भी दोनों जनजातियों में बिना बलि दिए कोई कार्य आगे बढ़ता नहीं है । मुंडाओं की आर्थिक स्थिति चेंचुओं से बहुत बेहतर है । ये लोग थोड़ी बहुत खेती भी कर लेते है । सभ्य समाज के ओर ध्यान देते हुए शिक्षित भी हो रहे है लेकिन चेंचुओं की आर्थिक स्थिति बहुत कठिन है इनको तो एक समय का भोजन एकत्रित करना बहुत मुश्किल है। उपन्यास में एक भी पात्र शिक्षित नहीं दिखाई देता है परन्तु 'गायब होता देश' उपन्यास में ज्यादा से ज्यादा आदिवासी पात्र शिक्षित हैं । चेंचु लोग भविष्य के बारे में कुछ सोचते ही नहीं हैं । केवल शिकार करते हुए अपना जीवन यापन करते हैं ।

अंततः हम कह सकते है कि आदिवासी जन-जीवन पर आधारित उपन्यासों में केवल आदिवासियों के रहन-सहन, खान-पान, संस्कृति, परंपरा,मूल्य, त्यौहार आदि का ही चित्रण नहीं मिलता बल्कि उनके संघर्ष एवं साहस का भी चित्रण मिलता है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

क. आधार ग्रन्थ सूची

पुस्तक	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.गायब होता देश	रणेंद्र	पेंगुइन बुक्स इंडिया	2014
2.आकुपच्चनि देशम्	वी.चंद्रशेखर राव	अक्षरा क्रियेटर्स हैदराबाद	2012

ख. सहायक ग्रंथ सूची

पुस्तक	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.आदिवासी कौन	रमणिका गुप्ता	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली	2008
2.आदिवासियों के बीच	श्रीचन्द्र जैन	शिवानी बुक्स दिल्ली	2007
3.आदिवासी साहित्य यात्रा	सं.रमणिका गुप्ता	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली	2008
4.भारत की जनजातियाँ	शिवतोष दास	किताब घर, दिल्ली	1983
5.आदिवासी दुनिया	हरिराम मीणा	नेशनल बुक ट्रस्ट दिल्ली	2012
6.आदिवासी अस्मिता का संकट	रमणिका गुप्ता	सामयिक प्रकाशन	2014

7.आदिवासी विकास से विस्थापन	सं.रमणिका गुप्ता	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली	2014
8.आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी	सं.रमणिका गुप्ता	वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली	2002
9.ग्लोबल गाँव के देवता	रणेंद्र	भारतीय ज्ञानपीठ	2009
10.जनजातीय भारत	डॉ.ए.आर.एन.श्रीवास्तव	मध्यप्रदेश ग्रंथ अकादमी भोपाल	2004
11.झारखंड के आदिवासियों के बीच	वीर भारत तलवार	भारतीय ज्ञानपीठ नयी दिल्ली	2008
12.आदिवासी अस्मिता प्रभुत्व और प्रतिरोध	सं. अनुज लुगुन	अनन्य प्रकाशन दिल्ली	2015
13.थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ	रणेंद्र	शिल्पायन प्रकाशन दिल्ली	2010
14.नगाड़े की तरह बजते शब्द	निर्मला पुतुल	भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली	2005
15.भारतीय मानव शास्त्र	प्रफुल्ल रंजन झा	पियूष पब्लिकेशन्स दिल्ली	1983
16. भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास	सच्चिदानन्द त्रिपाठी	डी.पी.एस.पब्लिकेशन हाउस दिल्ली	2012
17.मरंग गोड़ा	महुआमाजी	साहित्य उपक्रम	2012

नीलकंठ हुआ			
18.चेंचु	के.श्यामला	विजयवाणी प्रिंटर्स चौड़ेपल्ली	2011
19.तेलुगु कथा साहित्यम-गिरिजन जीवितम्	जी.शैलम्मा	गोपी ग्राफिक्स नेल्लूर	2011
20.नल्लमिरियम चेट्टु	वी.चन्द्रशेखर राव	चरिता इम्प्रेशंस हैदराबाद	2012
21.नव्य निराजनम	जगन्नाथशर्मा	अमरावति पब्लिकेशन्स गुंटूर	2013
22.मरणम अंचुना	वर्धेल्ली वेंकटेश्वरूलु	अडुगुजाडललु पब्लिकेशन्स हैदराबाद	2015
23.तुलनात्मक साहित्य भारतीय परिप्रेक्ष्य	इन्द्रनाथ चौधुरी	वाणी प्रकाशन दिल्ली	2010
24.तुलनात्मक साहित्य की भूमिका	नगेंद्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस	1982
25.पर्यावरण अध्ययन	जितेन्द्र कुमार होता	अर्चना पब्लिकेशन दिल्ली	2011

ग. कोश :

1. हिंदी शब्द कोश, हरदेव बाहरी, राजपाल एण्ड सन्ज प्रकाशन, 2009

2. विद्यार्थी हिंदी-हिंदी-तेलुगु कोश, एन.पी. कुट्टन पिल्लै, नीलकमल पब्लिकेशन, 2011

3. त्रिभाषा शब्दकोश, प्रद्दी सांबसिवा राव, विक्रम मोडर्न सिरिस, 2014

4. तेलुगु-हिंदी उच्चारण शब्द कोश, वेमुरि राधाकृष्ण मूर्ति, गीता प्रकाशन, 2012

घ. पत्र-पत्रिकाएँ :

1. आदिवासी-अस्तित्व अस्मिता और साहित्य, वर्तमान साहित्य, जून 2005, पृ. 22

2. स्त्रीवाद पत्रिका, नल्ल मल अडवुलो चेंचु मौनघोषा, कोंड़ाविटि सत्यावती, सितम्बर 2015

3. समवेत पत्रिका सं. नवीन कुमार नन्दवाना, समकालीन हिंदी कहानी और आदिवासी जीवन-संत्रास (आलेख) कुलदीप सिंह मीणा, पृ.98

4. हंस, राजेन्द्र यादव, मार्च 2011 पृ.87

ड. वेब सामग्री :

1. भारतीय राष्ट्र और आदिवासी, वीर भारत तलवार, www.debateonline.com, पृ.2-3

2. hi.wikipedia.org/wiki/ संस्कृति